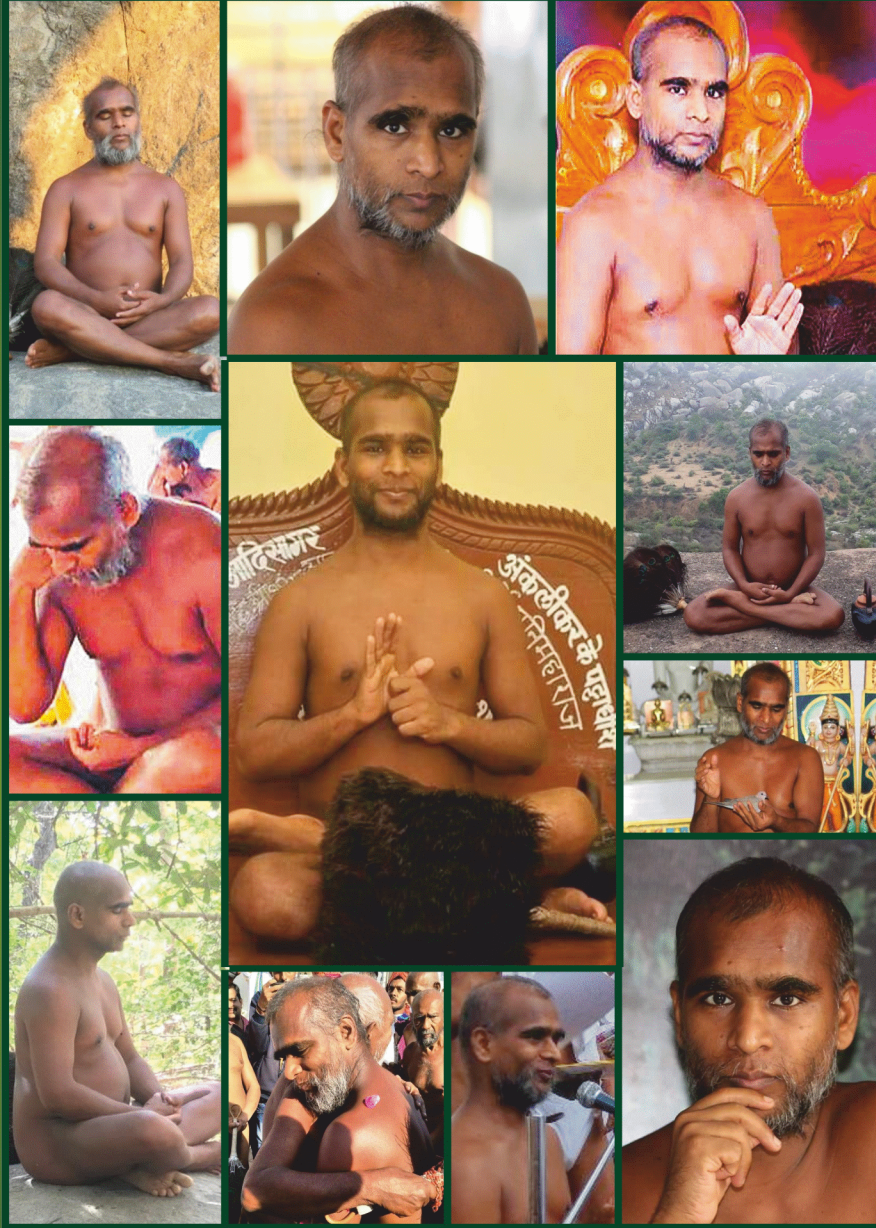




प्रवचनकर्ता आचार्यश्री  
सुनीलसागर महामुनिराज

अणुव्रत सदाचार और शाकाहार

प्रो. ( डॉ. ) लोकेश जैन



प्राच्यविद्या एवं जैन संस्कृति संरक्षण संस्थान  
महावीर पथ पब्लिकेशन  
लाडनू-341306 ( राजस्थान ) भारत  
website : www.pvjsss.com, email : pvjss108@gmail.com



Utsavkale Utsavkale, Utsavkale, Utsavkale, Utsavkale, Utsavkale, Utsavkale, Utsavkale, Utsavkale, Utsavkale, Utsavkale



## पूर्वाचार्यों का संक्षिप्त परिचय

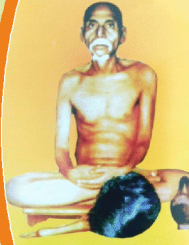


प.पू. आचार्यश्री आदिसागरजी  
महाराज (अंकलीकर)

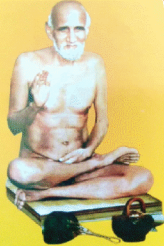
जन्म- भाद्रपद शुक्ल 4, सन 1866. अंकलीगांव ( महाराष्ट्र )  
मुनि दीक्षा- मार्गशीर्ष शुक्ल 2, सन 1913 सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरी ( महाराष्ट्र )  
आचार्य पद- ज्येष्ठ शुक्ल 5, सन 1915 काडगेमला, जयसिंहपुर ( महाराष्ट्र )  
समाधि- फाल्गुन शुक्ल 13, सन 1944, कुंजवन उदगांव  
विशेषता- श्रमण परंपरा के मणिमुकुट सात दिन में एक बार आहार करने वाले  
समाधि- फाल्गुन शुक्ल 13, सन 1944, कुंजवन उदगांव  
विशेषता- श्रमण परंपरा के मणिमुकुट सात दिन में एक बार आहार करने वाले



जन्म- वैशाख कृष्ण 10, सन 1910, फिरोजाबाद ( उ.प्र. )  
मुनि दीक्षा- फाल्गुन शुक्ल 11, सन 1943, उदगांव ( महाराष्ट्र )  
आचार्य पद- अश्विन शुक्ल 10, सन 1943 उदगांव ( महाराष्ट्र )  
समाधि- माघ कृष्ण 7, सन 1972 मेहसाणा ( गुजरात )  
विशेषता- 18 भाषाओं के ज्ञाता, तीर्थभक्त शिरोमणि मंत्रशास्त्र के ज्ञाता



प.पू. आचार्यश्री  
महावीरकीर्तिजी महाराज



प.पू. आचार्यश्री  
विमलसागर जी महाराज

जन्म- अश्विन कृष्ण 7, सन 1915 कोसमा जिला एटा ( उ.प्र. )  
मुनि दीक्षा- फाल्गुन शुक्ल 13, सन 1952 सोनागिरी सिद्धक्षेत्र ( म.प्र. )  
आचार्य पद- मार्गशीर्ष कृष्ण 2, सन 1960 टूंडला ( उ.प्र. )  
समाधि- पौष कृष्ण 12, सन 1994, श्री सम्मंदेशिखरजी  
विशेषता- पराविद्या के माध्यम से लोगों का उपकार करने वाले संत

जन्म- माघ शुक्ल 7, सन 1938 फफोतू जिला- एटा ( उ.प्र. )  
मुनि दीक्षा- कार्तिक शुक्ल 12, सन 1962, सम्मंदेशिखरजी  
आचार्य पद- माघ कृष्ण 3, सन 1972 मेहसाणा ( गुजरात )  
समाधि- पौष कृष्ण 4, सन 2010 कुंजवन कोल्हापुर ( महाराष्ट्र )  
विशेषता- 35 वर्ष तक अन्न, नमक, शक्कर, घी, तेल का त्याग, अंतिम वर्षों में केवल मट्ठा जल 48 घंटे में एक बार 10 हजार से अधिक निर्जल उपवास



युगश्रेष्ठ, तपस्वी सम्राट  
आचार्यश्री सम्मंदिनाराजजी महा



## पुण्यार्जक

श्रीमती रैन मंजूषा देवी जैन धर्म पत्नी स्व. श्री विजय स्वरूप जैन  
एवं

समस्त परिवारजन

डॉ. लोकेश जैन- श्रीमती मीनू जैन, श्री सोनेश जैन-श्रीमती रश्मि जैन

डॉ. दीपा जैन- श्री अमिताभ जैन, डॉ. इशिका जैन,

ईशान जैन, अरिना जैन, आशिका जैन, अंजिका जैन

निवासी-अवागढ़ जिला-एटा ( उ.प्र. ), प्रवासी-जयपुर ( राजस्थान )

# अणुव्रत, सदाचार और शाकाहार

श्रमण संस्कृति के उन्नायक, प्रभु वर्धमान की अमृतवाणी के  
वर्तमान उद्बोधक चतुर्थ पट्टाधीश चर्याचक्रवर्ती

आचार्यश्री सुनीलसागर महाराज

के गंधीनगर में प्रदत्त प्रवचन

संपादक

**डॉ. लोकेश जैन**

प्रोफेसर- ग्रामीण प्रबंध विभाग  
प्रबंधन एवं प्रौद्योगिकी संकाय, गुजरात विद्यापीठ,  
ग्रामीण परिसर-रांधेजा- गांधीनगर ( गुजरात )



महावीर पथ पब्लिकेशन  
प्राच्यविद्या एवं जैन संस्कृति संरक्षण संस्थान  
लाडनूं ( राजस्थान )

ISBN : 978-81-920597-1-9

कृति : अणुव्रत, सदाचार और शाकाहार

प्रवचनकर्ता : चतुर्थ पट्टाधीश चर्याचक्रवर्ती  
आचार्यश्री सुनीलसागर महामुनिराज

सम्पादक : डॉ लोकाेश जैन

मूल्य : 80/-

संस्करण : सितम्बर, 2019

प्रकाशक : महावीर पथा पब्लिकेशन  
प्राच्यविद्या एवं जैन संस्कृति संरक्षण संस्थान  
लाडनूँ ( राजस्थान )  
Ph. 7220089301, 7220089302,  
Website: www.pvjss.com, e\_mail: pvjss108@gmail.com

मुद्रक : वैशाली ग्राफिक्स, लाडनूँ

## भूमिका

राष्ट्र गौरव संत, प्राकृताचार्य अभिनव कुंदकुंद 108 आचार्य श्री सुनीलसागरजी का वर्ष 2018 का चातुर्मास गुजरात राज्य की राजधानी गांधीनगर में हुआ। गुरुवर व 45 पीछी के विशाल संघ का सानिध्य सुअवसर पाकर 35 घरों का छोटा सा समाज पुलकित हो उठा। चातुर्मास क्या मिला, समाज को सभी निधियां मिल गई हों, ऐसा लगता था हर कार्यक्रम के आयोजन में एक होड़ सी लगी रहती थी हर कोताही को आगे से आगे बढ़कर दूर करने की। आचार्यश्री के वात्सल्य के कारण समाज बेफिक्र होकर हर एक अनुष्ठान के आयोजन में लग जाता। जब तक गुरुवर का हाथ सिर पर है तब तक सब बहुत अच्छा होगा और इस चातुर्मास के दरम्यान इतना सब हुआ, वह अकल्पनीय था। प्रवचन की अमृतवाणी प्रातः दोपहर को स्वाध्याय तथा शाम को फिर आरती व धर्म प्रभावना व सीखने की कक्षाएं आदि नियमित था किन्तु इसके साथ साथ कई बड़े बड़े आयोजन हुए जिनमें राजनैतिक व सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाली नामचीन हस्तियां भी गुरुदेव के दर्शनार्थ तथा अपने प्रतिभाव व्यक्त करने हेतु आचार्यश्री के समक्ष सन्मति समवशरण में उपस्थित रहे।

इस दौरान आचार्यश्री व संघ के पावन सानिध्य में विविध धार्मिक अनुष्ठान अष्टाहिका, दशलक्षण विधान, मानस्तंभ निर्माण आदि सन्मति समवशरण में बहुत उत्साह से सम्पन्न हुए। जैन समाज को तो सीधा लाभ मिला ही किन्तु जैनतर समाज, सरकारी अधिकारीगण, मंत्री महोदय, विधानसभा सदस्य, विभिन्न सम्प्रदायों के धर्मगुरु व अनुयायी सभी समान रूप से आचार्य भगवन की ज्ञानगंगा के प्रत्यक्ष साक्षी बने। कुछ एम. एल. ए. तो बिना नागा प्रवचन भक्ति का लाभ लेते थे। गुजरात के महामहिम राज्यपाल श्री ओ. पी. कोहली जी, मुख्यमंत्री श्री विजयभाई रुपानीजी तथा प्रधानमंत्री नरेन्द्रभाई मोदीजी के बड़े भाई सोमभाई मोदी, छोटे भाई पंकज मोदी, रामायण में रावण की केन्द्रीय भूमिका अदा करने वाले कलाकार श्री अरविन्द त्रिवेदी सपरिवार आचार्यश्री के दर्शनार्थ पधारे एवं गद्-गद् होकर अपने प्रतिभाव व्यक्त तथा अहिंसा के पोषक नियमों को ग्रहण किया।

चातुर्मास में गुजरात की राजधानी गांधीनगर की यह धरा पवित्र पावन हो गई आचार्यश्री के ससंघ पदार्पण और जैनदर्शन की ज्ञानगंगा के अविरल प्रवाह से। जैन दर्शन की वैज्ञानिक समझ लोगों तक पहुँची, अनेकांतवाद, स्याद्वाद का आस्वादन लोगों ने जी भर कर किया, राष्ट्रवाद, भाईचारा, करुणा व दया जैसे मानवीय मूल्यों की सुवास भी प्रसंगवश इसमें मिश्रित होती रही। गुजरात राज्य के बाहर से भक्तगण सतत गुरुभक्ति का लाभार्जन करते रहे। कई आश्चर्यजनक अद्भुत घटनाएं आचार्यश्री के आभामण्डल के कारण आकार लेती रहीं जिसका साक्षी समस्त जनसमुदाय बना। इन पलों का संकलन तथा प्रसंगवश आचार्य भगवन की विशिष्ट देशना को उन लोगों तक पहुँचाना जो किन्हीं कारणों वश

उपस्थित नहीं हो सके तथा इन अविस्मरणीय क्षणों की स्मृतियों को भविष्य के लिए भावी पीढ़ी के लिए सहेजना तर्क संगत व कल्याणकारी लगा। इस हेतु से आचार्यश्री की प्रवचनमाला को लघु पुस्तिका के रूप में सुगठित करने का विचार किया। चूंकि 4 माह का समय बहुत लंबा होता है इसलिए प्रवचन समग्र को एक पुस्तिका में रख पाना न्याय संगत प्रतीत नहीं हुआ।

आचार्यश्री के समस्त प्रवचन श्रावकाचार को उत्कृष्ट बनाने वाले हैं। श्रावकों के चरित्र निर्माण में अणुव्रतों की अहम् भूमिका होती है जो समाज में सदाचार को जन्म देती है और इस सदाचार की स्थापना का एक महत्वपूर्ण भाग शाकाहार है जिसकी शिक्षा की जरूरत आज के समाज को है जिसको जानकर, समझकर, आत्मसातकर अर्थात् जीवन में लाकर, जीवनशैली का भाग बनाकर आत्म कल्याण सुनिश्चित किया जा सकता है। इसलिए इस पुस्तक का शीर्षक अणुव्रत, सदाचार और शाकाहार की ओर ध्यान गया जो श्रावकाचार को सही मायने में पोषित करता है।

इस संकलित प्रवचन संग्रह को अंतिम स्वरूप प्रदान करने में परमपूज्य गुरुदेव आचार्य श्री सुनीलसागरजी का वात्सल्य निवेदन स्वीकार कर गुरुदेव ने अपने व्यस्ततम साधना समय में से समय प्रदान कर मुझ पर बहुत उपकार किया है। मुनिश्री श्रुतांशसागरजी व सुधीरसागर जी ने अपनत्व के साथ श्रुत आराधना व प्रभावना के इस कार्य में मेरी गलतियों की ओर ध्यान आकर्षित कराकर मुझे उपकृत किया है। करुणामयी आर्यिका सूत्रमतिजी, सुद्रढमतिजी व सुस्वरमतिजी माताजी मेरे वे प्रेरणा स्रोत हैं जिन्होंने कभी मेरी ऊर्जा को इस दिशा में कम नहीं होने दिया। आपके कारण मुझे यह अवसर मिला मैं इसके लिए आप सभी भव्य आत्माओं का हृदय से आभारी हूँ। मैं अपने परिवारजनों के साथ साथ अग्रमिता क्रम में अपनी माता श्रीमती रैनमंजूषा देवी तथा पिता स्व. श्री विजयस्वरूपजी जैन का ऋणी हूँ जो मुझे इस तरह के काम करते देख सदैव हर्षित होते रहे, जिससे मुझे हर पल कार्य करने हेतु नव उत्साह व ऊर्जा व प्रेरणा मिलती रही।

आचार्यश्री की अमृतवाणी का लाभ उत्तरोत्तर जन समुदाय, युवा पीढ़ी को मिल सके इस मंगलमय आशय से इस प्रवचनमाला के प्रथम भाग का संकलन सुझ श्रद्धालुओं के सामने रखने का प्रयास किया है। मैं जिन श्रुत का मर्मज्ञ नहीं हूँ किन्तु सीखने समझने की भावना व लालसावश इस संग्रह को संकलित कर रहा हूँ जिसमें पूर्ण सावधानी के बावजूद भी गलतियां रह जाना स्वाभाविक है मैं इसकी नैतिक जिम्मेदारी स्वीकारते हुए क्षमा प्रार्थना करता हूँ तथा नम्र निवेदन करता हूँ कि उसे सुधार कर पढ़ें तथा मुझे उससे अवगत कराकर अनुग्रहीत करें।

**- डॉ. लोकेश जैन**

**प्रोफेसर- ग्रामीण प्रबंध विभाग, प्रबंधन एवं प्रोद्योगिकी संकाय, गुजरात विद्यापीठ,  
ग्रामीण परिसर-रांधेजा- गांधीनगर ( गुजरात )**

## प्रकाशकीय

जैन संस्कृति एवं भारतीय संस्कृति में आचार शब्द सदाचार के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। मन में शुभ विचारों का चलना विचार है, शुभवाणी का प्रयोग उच्चार है तथा शुभ विचारों का जीवन में धारण आचार है। इस प्रकार सदाचार शब्द विचार, आचार एवं उच्चार विशुद्धता, पवित्रता नियमबद्धता को ध्वनित करता है। जैन आचार का मूल आधार सम्यक्चरित्र है। तीर्थंकरों के उपदेशानुसार आचरण करना एवं विपरीत मार्ग का परित्याग करना सम्यक्चारित्र है। जैन ग्रंथों में आचार संहिता का विवेचन साधु एवं गृहस्थ दोनों की योग्यता को ध्यान में रखते हुए किया गया है। आचार पालन में उत्कृष्टता एवं न्यूनता के आधार पर जैन आचार संहिता दो भागों में विभक्त है— श्रमणाचार एवं श्रावकाचार।

श्रमणाचार आचार संहिता का मुख्य उद्देश्य आत्मसाक्षात्कार है। जबकि श्रावकाचार संहिता में व्यक्ति एवं समाज दोनों का ध्यान समाहित है। जैन परंपरा में श्रमणों के लिए पांच महाव्रत पांच समिति एवं तीन गुप्ति का विधान किया गया है। श्रावकों के लिए प्रथम अष्टमूलगुणों का पालन और सप्तव्यसन का त्याग प्रधानतया होता है। द्वितीय स्थान व्रतों के पालन का आता है इस प्रकार जीवन शोधन की व्यक्तिगत मुक्ति प्रक्रिया और समाज तथा विश्व में शांति स्थापना की महात्वाकांक्षा से प्रेरित होकर ही सामाजिक व्यवहार में अपरिग्रहवाद पर विशेष बल दिया गया है, अपरिग्रह अनासक्ति का मार्ग है इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आचार में अहिंसा, विचार में अनेकांत वाणी में स्याद्वाद और व्यवहार में अपरिग्रह— ये जीवन सूत्र जैन धर्म ने हमें दिए इन्हीं सूत्रों के सहारे समाज में और विश्व में शांति स्थापित हो सकती है। जैन धर्म तथा दर्शन के का एक एक सिद्धान्त मानव जीवन की एक एक समस्या के निवारण के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यदि हम इन सिद्धान्तों को अपने जीवन में चरित्रार्थ करें तो न केवल विश्व शान्ति की दिशा में अग्रसर होंगे अपितु इनसे आत्मशुद्धि एवं आत्मा कल्याण भी कर सकते हैं।

परमपूज्य राष्ट्रसंत प्राकृतकेसरी, युगदृष्टा, चतुर्थ पट्टाचार्य श्री सुनीलसागर जी महाराज के पावन अमृतमयी प्रवचनों को संकलित कर “अणुव्रत सदाचार और शाकाहार” कृति के रूप में तथा डॉ. लाकेश जैन, गांधीनगर द्वारा सम्पादित कर प्राच्य विद्या एवं जैन संस्कृति संरक्षण संस्थान के महावीर पथ पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है।

आचार्य भगवन् के मुखार्विन्द से मुखरित अमृतमयी वाणी को शब्दों में संजोकर पुस्तक का रूप दिया है। पूज्यवर ने बहुत ही उदारता के साथ श्रावक समाज को संबोधित कर बहुत ही कृपा की। आपके सम्बोधन से न जाने कितने लोगों का उपकार हुआ होगा, न जाने कितने भटक रहे लोगों को आपके पाथेय ने सनमार्ग मिला होगा। आपकी मृदुभाषी बोली एवं

वात्सल्यतामयी सरस एवं सरल भाषा में सम्बोधन लोगों के बहुत ही लोकप्रिय है। यह आपके प्रखर वक्तव्य और जनकल्याणकारी सम्बोधन का प्रतिफल है।

आपने इस कृति के माध्यम से जनसामान्य लोगों का न केवल जैन धर्म तथा दर्शन के विविध पक्षों की जानकारी दी है अपितु अहिंसा, अपरिग्रह, सदाचार, ब्रह्मचर्य, श्रावकाचार, श्रमणाचार, शाकाहार, दस-धर्म आदि का बोध कराया है। समाज में व्याप्त जटिल-से-जटिल बुराईयों को भी आपने अपने सम्बोधन के माध्यम से दूर करने का प्रयत्न किया है। चाहे वह नशाखोरी हो, आतंकवाद हो, वेश्यावृत्ति आदि। इतना ही नहीं आपने अपने सम्बोधन में महापुरुषों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के माध्यम से उन जैसा बनने की बात कही है, उन के पदचिन्हों पर चलने को प्रेरित किया है।

मैं आचार्य प्रवर के श्रीचरणों को बारम्बार नमोस्तु करते हुए कृतज्ञता करती हूँ कि आपने प्राच्यविद्या एवं जैन संस्कृति संरक्षण संस्थान के माध्यम से मुझे उक्त पुस्तक को प्रकाशित करने का अवसर दिया। मैं आपके प्रति पुनः कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। मैं आपके प्रति नतमस्तक हूँ।

उक्त पुस्तक को प्रकाशित करने में पुस्तक के सम्पादक एवं साहित्यकार प्रो. लोकेशजी जैन का अथक सहयोग रहा मैं आपके प्रति आभारी हूँ। आपने न केवल पुस्तक का सम्पादन किया अपितु पुस्तक को प्रकाशित करने में आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया जिसके फलस्वरूप यह पुस्तक आपके हाथ में है।

पुस्तक के मुद्रण एवं शब्द संयोजन श्री शरद जैन सुधान्शु के प्रति आभारी हूँ। आप मुद्रण सम्बन्धि कठिन से कठिन कार्य को सरल और सुगम बनाकर कार्य को सम्पादित करते हैं।

पाठकों एवं श्रावकसमाज के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। मैं आप सभी पाठकों से अनुरोध करती हूँ कि इस पुस्तक का पठन-पाठन करें और अपने परिवारजन, मित्रगण आदि को पढ़ने के लिए प्रेरित करें। आचार्यश्री द्वारा प्रदत्त इसी आशा के साथ....

- डॉ. मनीषा जैन

निदेशक

प्राच्यविद्या एवं जैन संस्कृति संरक्षण संस्थान, लाडनू

# अनुक्रमणिका

|                                                                                           |       |
|-------------------------------------------------------------------------------------------|-------|
| 1. जीवन में संयम आवश्यक                                                                   | 02-03 |
| 2. मन पर जीत ही सच्ची जीत                                                                 | 03-05 |
| 3. सकारात्मक सोच जीवन की दशा और दिशा बदल सकती है।                                         | 05-06 |
| 4. सफलता सदा कायम नहीं रहती                                                               | 06-07 |
| 5. शराब आदि व्यसन सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति में बाधक                                   | 08-10 |
| 6. भारतीय संस्कृति में आदर्श शिक्षक सदैव सम्माननीय                                        | 10-12 |
| 7. अणुब्रतों का पालन एवं आसक्तिरहित जीवन राष्ट्र के लिए वरदान                             | 12-14 |
| 8. चित्त पर नियंत्रण सर्व कल्याणकारी है                                                   | 15-18 |
| 9. उत्कृष्ट साधना, तपश्चर्या व सहजता की मूर्ति आचार्यश्री शांतिसागर                       | 18-20 |
| 10. जीवदया ही सच्चा धर्म                                                                  | 21-23 |
| 11. मानवता एवं अहिंसा सिंचन के लिए मुनिकुंजर आचार्यश्री आदिसागर                           | 24-26 |
| 12. जो काम सुई से हो सकता है उसके लिए तलवार उठाने की जरूरत नहीं                           | 26-27 |
| 13. मिलना किस काम का जब मन न मिले                                                         | 27-29 |
| 14. अहिंसा श्रेष्ठ धर्म इसका पालन ही सच्ची मानवता                                         | 29-30 |
| 15. क्रोध ही सर्वनाश की जड़ : उत्तम क्षमा धर्म                                            | 31-32 |
| 16. अहंकार छोड़ जीवन में मृदुता धारण करो : उत्तम मार्दव धर्म                              | 32-34 |
| 17. सरल स्वभावी और निष्कपटी होना : उत्तम आर्जव धर्म                                       | 34-35 |
| 18. लोभ पाप का बाप क्यों ? : उत्तम शौच धर्म                                               | 36-37 |
| 19. सत्यवादी नहीं किन्तु सत्य जीवन जीने वाले बनो : उत्तम सत्य धर्म                        | 37-39 |
| 20. सदगृहस्थ भी छोटे छोटे संकल्पों के पालन से कर सकते हैं<br>'उत्तम संयम धर्म' की साधना   | 40-42 |
| 21. कामना और इन्द्रियों का दमन है : उत्तम तप धर्म                                         | 42-44 |
| 22. आत्म कल्याण एवं समाज संतुलन का अद्भुत संगम : उत्तम त्याग धर्म                         | 44-46 |
| 23. परिग्रह परिमाण करना ही श्रावक के लिए : उत्तम आकिंचन धर्म                              | 46-48 |
| 24. श्रावक एकदेश ब्रह्मचर्य का पालन करके आत्मा के गुणों को<br>प्रकट कर सकता है            | 48-50 |
| 25. 18 भाषाओं के ज्ञाता तथा जैन धर्म के परम प्रभावक संत<br>आचार्यश्री महावीरकीर्ति महाराज | 51-53 |
| 26. शिक्षाव्रत-प्रोषधोपवास आत्मा की शुद्धि के लिए आवश्यक                                  | 53-55 |
| 27. व्यक्तित्व विकास के लिए स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता में भेद जरूरी                       | 55-56 |
| 28. बर्था डे, व्यर्थ डे न बन जाय इसका रखें ध्यान                                          | 57-59 |
| 29. परोपकारी वीतरागी दिगम्बर संत सदाचार की संस्कृति के वाहक हैं                           | 59-61 |
| 30. जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, अपितु जन-जन का धर्म है                                        | 62-63 |
| 31. जैन धर्म कठोर साधना का पर्याय                                                         | 63-66 |

|                                                                                                                 |         |
|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------|---------|
| 32. धर्ममय राजनीतिज्ञ जीव दया के कार्य को आगे ले जा सकते हैं                                                    | 66-68   |
| 33. खुशी के समय होश और मुसीबत के समय जोश न खोएं                                                                 | 68-69   |
| 34. हर व्यक्ति के जीवन का प्रथम शिक्षक है माँ                                                                   | 69-72   |
| 35. मानवजन्म रूपी पारसमणि को पाकर सम्यक् पुरुषार्थ के द्वारा थोड़े ही भवों में होवें भव पार                     | 72-73   |
| 36. गुरुचरणों में समर्पण तथा सकारात्मक विचारों से संवरता है जीवन                                                | 74-76   |
| 37. स्वस्थ समाज एवं उन्नत जीवन के लिए भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत का पालन हितकारी                                | 76-78   |
| 38. पत्थर पर नाम लिखने वाला नहीं अपितु सेवाभावी दान ही श्रेष्ठ                                                  | 78-80   |
| 39. सुखी रहना हो तो दूसरों में कमियां नहीं, सदगुण ढूंढो                                                         | 80-82   |
| 40. धर्म और तप युवास्था में करने का कर्तव्य है, वृद्धावस्था तो सल्लेखना के लिए है                               | 82-84   |
| 41. गांधीजी का अहिंसामय जीवन वर्तमान में भी प्रासंगिक एवं प्रेरणास्पद                                           | 85-87   |
| 42. इंसान के बनाए भगवान को लोग पूजते हैं किन्तु भगवान के बनाए इंसान को नहीं                                     | 88-89   |
| 43. धर्म का सेवन करो, मृदु बनो, मुलायम बनो                                                                      | 89-93   |
| 44. भगवान महावीर के पूर्वर्भवों से लें सम्यक् जीवनचर्या का बोधपाठ                                               | 93-96   |
| 45. मन में संवेदना का दीप जलाकर समाज की अमावस को पूर्णिमा में बदलें                                             | 96-98   |
| 46. सकारात्मक विचारों की शक्ति और सुसंगति जीवन के सर्वोत्कर्ष की गारंटी                                         | 98-100  |
| 47. सेवा और प्रेम मोक्ष का मार्ग तथा घृणा व कषाय पतन का धाम                                                     | 100-102 |
| 48. मर्यादापूर्ण जीवन ही मस्तीभरा आनंदमय जीवन                                                                   | 102-104 |
| 49. पर पीड़ा को समझने वाला ही सच्चा वैष्णवजन वैष्णवजन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाणे रे...                      | 104-105 |
| 50. सल्लेखना-समाधिमरण ही अहिंसक एवं श्रेष्ठ                                                                     | 105-108 |
| 51. प्राकृत भाषा के आगम ग्रंथों में की गई अहिंसा, सदाचार और शाकाहार की पहल राष्ट्र की सुख-शांति के लिए अनिवार्य | 108-110 |
| 52. अणुव्रतों के अतिचार व्यक्ति समाज व राष्ट्र के आरोग्य के लिए घातक                                            | 111-114 |
| 53. जो आसक्ति है, वही परिग्रह है                                                                                | 114-115 |
| 54. अणुबम से नहीं, अणुव्रत से होगी विश्व शांति                                                                  | 115-116 |
| 55. अनर्थदण्ड से बचो और सार्थकता के लिए करो अहिंसक पुरुषार्थ                                                    | 116-118 |
| 56. सामाजिक सद्भाव के विकास से हो सकता है गिरनार का सर्वसम्मति से समाधान                                        | 118-119 |
| 57. जो पर को दुःख दे, सुख माने, उसे पतित मानो                                                                   | 119-120 |
| 58. मुनियों का विहार एक सहज एवं शाश्वत प्रक्रिया है।                                                            | 120-121 |
| 59. श्रीमद् राजचन्द्रजी की आँखों में झलकती थी वीतरागता                                                          | 121-122 |
| 60. स्तुति - भारदी-थुदी आचार्य श्रीसुनीलसागर महाराज कृत                                                         | 122-123 |

## मनभावन मंगलाचरण

( 108 आचार्य श्री सुनीलसागरजी गुरुदेव )

ॐ णमो जिणाणं, ॐ णमो जिणाणं, ॐ णमो जिणाणं

महावीर बोलो श्री महावीर बोलो.....

महावीर बोलो श्री महावीर बोलो

त्रिशलाकुंवर श्री महावीर बोलो..

सिद्धार्थ नंदन श्री महावीर बोलो

कुण्डलपुर वासी श्री महावीर बोलो

पावापुरी से मुक्त महावीर बोलो

महावीरं, जिनवीरं अतिवीरं वर्धमानं...

महावीर बोलो श्री महावीर बोलो.....

## मेरे मन मंदिर में आन..

मेरे मन मंदिर में आन,

पधारो महावीर भगवान

पधारो महावीर भगवान,

विराजो, महावीर भगवान

मेरे मन मंदिर में आन.....

प्रभजी तुम आनंद सरोवर,

रूप तुम्हारा महा मनोहर

प्रभुजी तुम करुणा के सागर,

तुम्हीं हो प्रभु ज्ञान दिवाकर

हो जाए सबका कल्याण,

पधारो महावीर भगवान

मेरे मन मंदिर में आन,

पधारो महावीर भगवान

जय हो जय हो जय हो.....

## 1

## जीवन में संयम आवश्यक

पानी यदि अपनी मर्यादा तोड़ता है, तो विनाश होता है।  
और यदि वाणी की मर्यादा टूटती है, तो सर्वनाश होता है।।

इस युक्ति के संदर्भ को वर्तमान मानव समुदाय के कल्याण हेतु स्पष्टता करते हुए चातुर्मास के दरम्यान गांधीनगर—गुजरात में विराजित परम पूज्य चर्याचक्रवर्ती आचार्यश्री सुनीलसागरजी ने कहा कि पानी यदि मर्यादा में है तो वह एक जीवनदायिनी शक्ति बनता है किन्तु यदि वह अपनी मर्यादा को लांघ जाता है तो विनाश का तांडव खड़ा कर देता है। केरल जैसी आपदाएं इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। हालांकि इसके लिए पर्यावरण का विनाश, प्लास्टिक का बढ़ता हुआ उपयोग, जल प्रदूषण तथा जैव विविधता का विनाश आदि मानवसृजित कारण उत्तरदायी हैं। आग के बारे में भी यही विधान किया जा सकता है। चूल्हे की मर्यादा में रहकर आग भोजन पकाकर भूख मिटाने का काम करती है किन्तु जब यह बेकाबू होकर फैलती है तो यही आग सर्वनाश व तबाही का सबब बनती है।

वाणी की निरंकुशता एवं अविवेकपूर्ण उपयोग को लेकर द्रोपदी के कटु व्यंग—मिश्रित वचन एवं महाभारत के रूप में उसके परिणामों से हम सभी भली भांति परिचित हैं। निरंकुश वाणी प्रयोग से खड़े होते साम्प्रदायिक झगड़े, परिवार में पनपते व गहराते मन मुटाव, कार्यस्थलीय संघर्ष आदि रोजमर्रा की जिंदगी के उदाहरण हैं फिर भी हम सावधान नहीं होते यही तो आश्चर्य है। नीतिकारों ने कहा है कि अति सर्वत्र वर्जित होती है। इस समस्या के समाधान की दिशा में जैन धर्म, जैन दर्शन हिंसा, झूठ, चोरी कुशील, परिग्रह आदि पांच पापों के दूर रहने की देशना करता है जो व्यवहार में झगड़े की जड़ हैं, विवाद का कारण हैं एवं विपत्तियों के आमंत्रक निमित्त हैं तथा निश्चयनय में जीवन की कुगति का कारण भी।

महामुनिराज सकल देश अर्थात् सम्पूर्ण रूप से इन पांच पापों का त्याग करते हैं जबकि श्रावक अपनी आत्म विशुद्धि को बढ़ाते हुए एक देश इन हिंसादिक पांच पापों का त्याग करके जीवन को मर्यादा में बांधता है और संयममय जीवन जीने का पुरुषार्थ करता है। सांसारिक जीवन में कई बार व्यावहारिक झूठ भी बोलना पड़ जाता है अपनी आजीविका आदि को चलाने के लिए। लेकिन इसे ग्राह्य कहा जा सकता है यदि यह संयममय मर्यादा में बंधा हो। ब्रह्मचर्य व्रत अर्थात् शील सहित जीवन यापन समाज में सुसंस्कार एवं आदर्श उदाहरण प्रस्तुत कर व्यभिचारमुक्त, साफ—सुथरे समाज की

स्थापना में मददरूप हो सकता है। इतिहास सीता, अंजना आदि सतियों को उनके शीलयुक्त जीवन के लिए याद करता है।

परिग्रह आज के समाज का सबसे बड़ा दूषण जिसने सामाजिक—आर्थिक असमानता, अराजकता, गरीबी, भुखमरी आदि को जन्म दिया है। कुछ के पास तो बहुत कुछ अर्थात् सभी कुछ है, जरूरत से अत्यन्त अधिक है जबकि बहुत से लोगों के पास जीवन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए कुछ भी नहीं है। एक अणुव्रती श्रावक इस बाह्य परिग्रह का एकदेश त्याग तो करता ही है साथ ही आन्तरिक परिग्रह जैसे भावी महत्वाकांक्षा, अति—चाहत आदि का भी त्याग करता चला जाता है जो ईर्ष्या, वैमनस्य, संघर्ष व हताशा की जड़ है। यदि दुनियाँ इन अणुव्रतों का हृदय से पालन करने लग जाय तो फिर संसार में अणुबमों की जरूरत नहीं रहेगी।

जैसे एक छोटी सी मछली पानी के प्रति स्वयं समर्पित करके पानी की धारा के विपरीत भी तैरती चली जाती है जबकि एक विशालकाय हाथी पानी की सीधी धार में भी समूचा बह जाता है। इसीलिए यदि हम स्वयं को सम्यक्त्व से परिपूर्ण वीतरागी धर्म के प्रति समर्पित कर देते हैं जो किसी जाति वर्ग से जुड़ा नहीं है, तो स्वयं और समाज दोनों का ही कल्याण कर सकते हैं।

आज आरंभिक व्याख्यान देते हुए आर्यिकाश्री आर्षमति माताजी ने श्रावकों को शुद्धतापूर्ण तरीके भोजनादि तैयार करने, समता धारण करने तथा संतोष का अभ्यास करने हेतु प्रेरणा प्रदान की।

## 2

### मन पर जीत ही सच्ची जीत

चातुर्मास दरम्यान गुजरात की राजधानी गांधीनगर में विराजित चर्याचक्रवर्ती, साधनाश्रेष्ठ वात्सल्यमूर्ति 108 आचार्य श्री सुनीलसागरजी की वाणी और 43 पिच्छी ससंघ की साधना से सिर्फ जैन समुदाय ही नहीं अपितु जैनोत्तर समुदाय भी महक रहा है। आचार्यश्री ने गांधीनगर दक्षिण से वर्तमान विधायक श्री शंभुजी ठाकोर एवं सेक्टर 21 पुलिस स्टेशन तथा पेंथापुर पुलिस स्टेशन के अधिकारियों के प्रवचन सभा में आने पर सभा को संबोधित करते हुए कहा कि जैन किसी जाति विशेष से जुड़ा धर्म नहीं है अपितु सभी के कल्याण का धर्म है। जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर प्रभु महावीर क्षत्रिय थे, राजकाज के समस्त सुख उनको उपलब्ध थे किन्तु उन्होंने आत्म साधना के लिए और विश्व को सच्चे आनंद का अनुभव कराने के लिए संयम, तप और

त्याग का रास्ता चुना। कठोर तपस्या के द्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया और सभी को अहिंसा का, जिओ और जीने दो का संदेश दिया।

आगम कहते हैं कि भौतिक रूप से की गई हिंसा ही मात्र हिंसा नहीं है अपितु जैन धर्म हिंसा की सूक्ष्म व्याख्या करते हुए कहता है कि मन, वचन और काय से भी हिंसा हो सकती है। इसमें न दिखने वाली मन की हिंसा तो बहुत खतरनाक है। वह आत्मा को कलुषित करती है। जब मन की हिंसा वचन के रूप में प्रकट होती है तो क्लेश व झगड़े वैर आदि बढ़ते हैं। लोग वचन हिंसाजनित क्रोध में क्या क्या नहीं कर डालते? और जब यह वचन हिंसा बढ़ते बढ़ते विकराल रूप धारण कर लेती है तो काय अर्थात् भौतिक हिंसा में परिणित हो जाती है। गुरुदेव ने कहा कि हमें सदैव मन की हिंसा से बचना है अपने भावों को सभी के प्रति निर्मल राग—द्वेष से परे बनाना है तभी हम अहिंसा के सच्चे मार्ग पर चल सकेंगे। भाव हिंसा से भव बिगड़ते देर नहीं लगती। समझदार लोग ऐसे निमित्त के उत्पन्न होने पर भी धैर्य व सहनशीलता को अपना कर मन और वचन की हिंसा से बचते हैं जिसके कारण काय हिंसा नहीं होती। यदि हम विवेकपूर्वक व्यवहार के द्वारा जहाँ तक हो सके बिन जरूरी हिंसा को टालते हैं तो सावधानी रखते हुए भी यदि अनजाने में किसी जीव की हिंसा हमसे या हमारे निमित्त से हो जाती है तो उसका पाप नहीं लगता क्योंकि हमारा न तो ऐसा करने का कोई भाव या इरादा था और न ही हमने कोई असावधानी रखी है। दिगम्बर मुनिराज विहार करते समय तथा दैनिक मुनिचर्याओं में इसी तरह की सावधानी रखते हैं।

पाप की व्याख्या करते हुए आचार्यश्री ने आरम्भ में ही स्पष्ट किया कि पाप अथवा गलती हो जाना स्वाभाविक है जिसको नहीं दोहराने का संकल्प करने से, अपनो से बड़ों, मुनि आदि के समक्ष स्वीकारते हुए योग्य प्रायश्चित्त करने से सुधार हो सकता है। किन्तु इसके विपरीत गलतियाँ छुपाने से और एक के बाद एक बड़ी गलती करते जाने से निश्चय और व्यवहार में पाप व अनीति पनपते हैं जबकि सुधार की मंशा से की गई पाप की स्वीकारोक्ति वैर की जगह मित्रता को जन्म देती है जटिलता की जगह सहजता का वातावरण खड़ा करती है। इसलिए मन के मैल का साफ होना बहुत जरूरी है। कहा भी है— मन के हारे हार, मन के जीते जीत।

प्रत्यक्ष हिंसा का त्याग तो जरूरी है ही किन्तु इसके साथ मन की हिंसा का त्याग भाव शुद्धि के लिए अनिवार्य है। उन्होंने आगे कहा कि राष्ट्र की रक्षा के लिए की गई हिंसा हिंसा नहीं मानी जाती इसलिए देश और समाज की रक्षा के लिए हम सभी को आगे आना चाहिए।

आज प्रवचन के आरंभ में संघस्थ मुनिश्री सुकमाल सागरजी महाराज ने लोभ की परिणति को स्पष्ट करती बहुचर्चित कथा— टका सेर भाजी, टका

सेर खाजा के माध्यम से लोगों को सम्बोधित किया और प्रेरणा दी कि गुरु की सीख न मानने से फांसी के फंदे पर भी लटकना पड़ जाता है। और वे सद्गुरु ही हैं जो वात्सल्य व प्रेम के वशीभूत होकर बात न माने जाने पर भी अपने शिष्य को युक्तिपूर्वक फांसी के फंदे से भी सकुशल वापस लौटा लाते हैं। लालचवृत्ति एवं इन्द्रिय संयम अनिवार्य है यदि सांसारिक प्रपंचो से बचना है। जैन धर्म सभी को यह पावन मार्ग बताता है।

### 3

## सकारात्मक सोच जीवन की दशा और दिशा बदल सकती है।

भगवान महावीर कहते हैं कि हमेशा सकारात्मक सोच के साथ जीवन यापन करो, कभी किसी से ईर्ष्या मत करो। जो आगे बढ़ चुके हैं उनके पदचिन्हों को देखकर, प्रेरणा लेकर आगे बढ़ो तथा अपनों से छोटों की प्रगति से हर्षित होकर स्वयं को संयत, संयमित करते हुए प्रगतिशील बनो। सकारात्मक सोच के प्रभावों की गूढ़ किन्तु सहज व्याख्या करते हुए परमपूज्य परमयोगी 108 आचार्य श्री सुनील सागरजी महाराज ने कहा कि सकारात्मक सोच वाला व्यक्ति हर जगह यहाँ तक कि बुराई में भी अच्छाई ढूँढ़ ही लेता है जबकि नकारात्मक सोच वाला व्यक्ति छिद्रानुवेशी की भांति किसी न किसी तरह अच्छाई में भी कमियाँ ढूँढ़ने में अपना मूल्यवान समय, शक्ति व चेतना को बर्बाद करता रहता है।

हमें समझना होगा कि यदि कहीं कोई कमी भी है तो हमें कमियों को गिनने-गिनाने की बजाय सकारात्मक व रचनात्मक सोच रखते हुए उनको दूर करने का पुरुषार्थ करके योगदान करना चाहिए। बतौर उदाहरण, कुछ लोग इतने नकारात्मक और कृतघ्न होते हैं कि दूसरों के यहाँ मुफ्त में खा-पीकर भी तरह तरह की कमियाँ निकालने से बाज नहीं आते। जबकि हमें तो उस खिलाने वाले की भावना को समझना चाहिए था उसका यथायोग्य आदर करना चाहिए था। इसी नकारात्मक सोच के चलते लोग दूसरों की प्रगति से कुछ सीख लेने की बजाय, उसे देखकर स्वयं आगे बढ़ने की बजाय उससे न सिर्फ ईर्ष्या करके अपने परिणामों को कलुषित करते रहते हैं अपितु उसे गिराने की नीचवृत्ति अपनाने से भी नहीं कतराते।

गलतियाँ निकालने से सामने वाले का कुछ बिगड़े या न बिगड़े किन्तु नकारात्मक सोच को अंजाम देने वाले के भाव और भव अवश्य बिगड़ जाते हैं। सकारात्मक सोच हमें हिंसादि पांच पाप, क्रोध, मान, माया, लोभ

आदि चार कषायों से बचने हेतु सावधान करती है जिससे हमारे जीवन को सही दिशा मिलती है। हम प्रायः नकारात्मक सोच के कारण प्रमादग्रस्त बनते हैं, दूसरों के लिए अवरोधक बनते हैं किन्तु यह विचार नहीं कर पाते हमारी इन दुष्प्रवृत्तियों का प्रभाव सामने वाले पर पड़ने से पूर्व हमारे अपने चित्त और आत्मा की निर्मलता का घात कर डालता है।

क्रोधादि कषायों से सर्व प्रथम अपना तन-मन विकृत बनता है। इस प्रकार नकारात्मक सोच एक प्रकार की हिंसा है। यदि नियम लेकर संकल्प लेकर इसका त्याग नहीं किया जाता तो ये नकारात्मक विकारी भाव अवसर और निमित्त पाते ही आपके जीवन को कभी भी तहस-नहस कर सकते हैं। इसके विपरीत सकारात्मक सोच में आपका भी भला और दूसरों का भी भला होता है। इस व्यवस्था में तनावमुक्त एवं प्रसन्न रह सकते हैं, अपनी निहित शक्तियों का स्वयं, समाज व राष्ट्र के हित में श्रेष्ठतम उपयोग कर सकते हैं। सकारात्मक सोच के माध्यम से संयममय जीवन की अवधारणा को और अधिक पुष्ट करते हुए आचार्यश्री कहते हैं कि मात्र वस्तु त्याग से ही काम नहीं चलना है अपितु वस्तु के प्रति रुचि और आसक्ति का पूर्णरूप से त्याग करने पर ही आन्तरिक और बाह्य समृद्धि संभव हो सकती है।

प्रवचन के आरंभ में संघस्थ युवामुनि श्री सुश्रुतसागरजी ने पारंपरिक गीत प्रथा-बारहमासा के द्वारा संयममय कठिन साधनायुक्त गुरुचर्या का परिचय अपनी संगीतमयी वाणी में करा कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया।

## 4

### सफलता सदा कायम नहीं रहती

सफलता और असफलता रूपी दो धाराओं के मध्य मानव की समूची जिंदगी गुजर जाती है। असफल होने वाला कभी भी पुरुषार्थ के बल पर सफलता हासिल कर सकता है और सफल व्यक्ति को भी नीचे उतरना पड़ सकता है, कोई भी उसका रिकार्ड तोड़कर उसे पीछे के पायदान पर खड़ा कर सकता है। इस लोकोपयोगी सीख के माध्यम से प्राकृताचार्य आचार्य गुरुवर श्री सुनील सागरजी महाराज ने आज प्रातःकालीन सार्वजनिक उद्बोधन में कहा कि जीवन में न तो सफलता स्थायी है और न ही असफलता। हमें न तो सफलता के आने पर घमंड करना चाहिए और न ही असफलता होने पर निराशा में डूब जाना चाहिए। दोनों ही स्थितियों में धैर्य व सौम्यता को हर हाल में बनाए रखना चाहिए। किसी ने सत्य ही कहा है—

सफलता की ऊँचाई पर हो तो धैर्य रखना,  
वरना पक्षियों को भी पता है कि,  
आकाश में ठहरने की जगह नहीं होती।

आज हम जिस मुकाम पर हैं, कल वहाँ कोई और आयेगा तब फिर ये तुम्हारा गुमान करना व्यर्थ है जिसके मद में हम लोभ, लालच मायाचारी करने से भी गुरेज नहीं करते।

गुरुदेव ने कहा कि हिंसादिक प्रवृत्तियों का त्याग न करने से हिंसा होती है। वस्तुतः किसी त्याग योग्य वस्तु के सेवन में हिंसा नहीं है अपितु उसमें आसक्ति रखने, ममत्व रखने के परिणाम स्वरूप बिगड़ने वाले भावों के द्वारा हिंसा होती है इसलिए ऐसी वस्तु के आयतन में हिंसा मानी जाती है और उस वस्तु का त्याग करना ही अच्छा होता है। आसक्ति पापबंध का कारण है। उदाहरण के लिए कपड़ों में हिंसा नहीं मानी जा सकती किन्तु उनके प्रति ममत्व रखने से तत्संबंधी पाप तो लगता ही है तथा उसकी प्राप्ति में अवरोध आने से भाव और फिर भव दोनों बिगड़ते हैं इसलिए कपड़ों के संग्रह, अतिरेक परिग्रह को हिंसा का आयतन माना गया है और इसे पापरूप हिंसा कहा गया है।

जहाँ तक संभव हो हमें प्रमाद आदि छोड़कर, विवेक को धारण कर इससे बचने का यत्न और योग्य पुरुषार्थ करना चाहिए। पूर्वचार्यों का कथन है कि यदि अनजाने में इस तरह का हिंसादि पाप हो जाय, तो इतना पाप नहीं लगता जितना कि ज्ञान व बोध होने के बाद भी जानबूझकर, प्रमादवश आगम की अवमानना कर की गई हिंसादिक प्रवृत्तियों से लगता है क्योंकि इससे परिणाम विशुद्धि नहीं हो पाती और आश्रव बंध लगा रहता है। विशुद्धि के लिए यथाख्यात चारित्र आवश्यक है अर्थात् आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही रूपों में इन अहिंसादिक प्रवृत्तियों का प्रकटीकरण होना चाहिए।

संघस्थ मुनि श्री श्रुतांशसागरजी महाराज ने प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान के पूर्व भव की आहारदान घटना का वर्णन करते हुए बताया कि किस प्रकार राजा बज्रजंघ उनकी पत्नी द्वारा भक्ति-भाव पूर्वक आहार दान करने से एवं वहाँ उपस्थित मंत्रीगण तथा 4 जंगली प्राणियों द्वारा उसकी अनुमोदना करने से उनका भवच्छेद हुआ। जबकि खाना पकाने वाली नौकरानी के इस प्रकार के भावों के अभाव में उसे कोई फल प्राप्त नहीं हुआ। अर्थात् जो कार्य भाव सहित किए जाते हैं, कराए जाते हैं, अनुमोदित किए जाते हैं उनका फल अवश्य ही जीव को प्राप्त होता है। उन्होंने कहा कि आहार में वस्तुएँ अधिक बनाने की बजाए मर्यादित वस्तुओं के साथ सादगीपूर्ण भोजन शुद्धता के साथ तैयार किया जाय तथा क्रिया शुद्धि का बराबर ध्यान रखा जाए तो अतिशय पुण्य का बंध होता है। इस भावपूर्ण आहार दान से भव्य जीवों के भव सुधर जाते हैं।

## 5

## शराब आदि व्यसन सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति में बाधक

सदाचारी स्वयं भी सुखी होता है तथा अपने चरित्र से दूसरों को भी आनंदित करता है। चतुर्थपट्टाचार्य परमप्रभावक दिगम्बर संत चर्याचक्रवर्ती आचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज ने आज प्रातःकालीन प्रवचन सभा में सदाचार की राह में बाधक व्यसन के मुद्दे को केन्द्र में रखकर अपना प्रवचन शुरू किया कि किस प्रकार ये व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के हित में बाधक बनता है। पाश्चात्य संस्कृति से अभिभूत युवाधन आज व्यसन के दलदल में फँसकर हिंसादिक पाप कर रहा है तथा स्वयं का सर्वनाश करके परिवार को भी तिल तिल कर मरने पर मजबूर कर रहा है। इससे उसका स्वयं का तो विनाश होता ही है वह अपने आसपास के अन्य कई लोगों को भी बिगाड़ता है। इतिहास गवाह है कि शराब की लत के कारण क्षत्रिय शूरवीर समाज भी मुगलों और अरबों से पराजित होता रहा।

एक श्रावक के लिए सदाचारी जीवन जीने के लिए 8 मूलगुणों का पालन अनिवार्य बताया है। विभिन्न जैनाचार्यों ने इन मूलगुणों में अलग-अलग घटकों को सम्मिलित किया है। सभी मदिरा, मांस, मधु, असंख्यात सूक्ष्म जीवराशि वाले पंचउदम्बर फल के त्याग का आग्रह करते हैं। पंडित आशाधरजी तो इसमें व्यसनमुक्ति के साथ साथ रात्रि भोजन व अनछने जल का त्याग और जीवरक्षा का भी आग्रह कठोरता से रखते हैं, वहीं वसुनंदी आचार्यजी कहते हैं—

**“जुआ खेलना, मांस मद, वेश्यागमन, शिकार।  
चोरी, पर रमणी रमण सातों व्यसन निवार”**

वे इन सप्त व्यसनों से दूर रहने की हिमायत करते हैं। मद में डूबा हुआ एक समाज पशुओं की निर्मम तरीके से हत्या(हलाल) का खेल खेलते हुए धर्म का हवाला देता है, कैसी दयनीय मूढ़ता की स्थिति है जिन्होंने जीव के प्रति करुणा ताक में उठाकर रख दी है। अरे! योगेश्वर श्रीकृष्ण से खेल एवं खेल की भावना सीखो। ऐसे मनोरंजक खेलों को प्राधान्य मिलना चाहिए जिससे प्रीत बढ़ती हो, द्वेष घटता हो और लोगों में भाईचारा पनपता हो। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने प्रेम व वात्सल्य से परिपूर्ण खेल खेले किन्तु जुआ आदि से दूर रहे उन्होंने दुर्योधन व युधिष्ठिर को भी जुआ खेलने से मना किया। कृष्ण का खेल था पशुप्रेम, गेंद का खेल जिसके द्वारा खेल खेल में उन्होंने कालिया नाग जैसे दुष्ट का मर्दन किया जो यमुना के जल में विष मिलाकर

निरीह पशुओं के प्राण हरता था। सामाजिक समरसता का पूरक माखन चोरी भी उनका खेल था जिसके जरिए वे स्वदेशी का संदेश दे रहे थे। किसी भी महापुरुष का जीवन ऐसा नहीं मिलता जो शराब सेवन करते हों या ऐसे कार्य की अनुमोदना करते हों।

आचार्यश्री कहते हैं कि जब तक जीवन से हिंसा का खात्मा नहीं हो जाता तब तक जीवात्मा और परमात्मा का मिलन नहीं हो सकता। हम कहीं भी पैदा हो गए किन्तु अब तो उजाले में जीने की आदत डालें। ये शराब आदि व्यसन मन को मोहित करते हैं और एक के बाद एक कई गुनाह बारी बारी से व्यक्ति से करा डालते हैं। इसके नशे में उसे भान ही नहीं रहता कि उसने अपना कितना अहित कर लिया? कई बार स्वार्थी तत्व उसकी इसी कमजोरी का फायदा उठाकर न सिर्फ उसे बल्कि उसके अपनों का भी जीवन तहस नहस कर डालते हैं। ऐसा व्यक्ति अनियंत्रित होकर मनमाना निरंकुश व्यवहार करने लगता है किसी भी प्रकार की हिंसा एवं उसके कुत्सित परिणामों का भय उसे नहीं रहता। व्यसन में अंधा व्यक्ति पवित्र रिश्तों की मर्यादा को भी तार तार कर देता है और ऐसा अमानवीय, अधम कर्म करते हुए लोक निंदा का पात्र बनता है। एक शिक्षाप्रद कथानक के माध्यम से आचार्यश्री ने व्यसन के परिणामों की भयानकता का बोध कराया कि एक संन्यासी के पास एक रूपसी उनका चारित्र खंडित करने के उद्देश्य से मदिरा व मांस का पात्र लेकर उनके पास गई और तलवार का भय दिखाते हुए कहा कि मदिरा, मांस और मैं रूपसी स्वयं तुम्हें इन तीनों में से किसी एक को स्वाकीर करना होगा। संन्यासी भय के साये में रहते हुए एक क्षण विचारता है कि इन सभी का सेवन इह लोक व परलोक दोनों ही दृष्टि से निकृष्ट है किन्तु जीवन की लालसा में शिथिलता का शिकार होते हुए विचार कर लेता है कि चलो शराब पी लेता हूँ, पानी जैसा ही तो है। किन्तु शराब के नशे में धुत होते ही वह लाये हुए मांस से अपनी क्षुधा मिटाने को आतुर हो उठता है और मदहोश होते हुए उस रूपसी के बाहुपाश में बंध जाता है। देखिए इस शराब के चलते सभी अवगुणों का वह दास बन जाता है। किसी ने कहा है कि

**अच्छा हुआ कि अँगूर के बेटा नहीं हुआ,  
बेटी ने ही दुनियाँ सिर पर उठा रखी है।**

सम्पूर्ण देश में शराब बंदी होनी चाहिए। गुजरात में हैं, अच्छी बात है, इससे कुछ तो फर्क पड़ा है। हम आये दिन कच्ची दारु के सेवन से होने वाली असमय सामूहिक मौत के तांडव से वाकिफ ही हैं। इस व्यसन की आग में कुछ तो सीधे ही मर जाते हैं तथा कुछ के परिवार सिसक सिसक कर, धीमे धीमे दम तोड़ने को विवश होते हैं।

शराब विविध प्रकार के धान्य-फल आदि को सड़ागला कर, उबालकर तथा उसकी वाष्प को इकट्ठा करके बनाई जाती है जिसकी

प्रक्रिया में संख्यात जीवों की हिंसा होती है। इससे अभिमान, काम, क्रोध आदि विकृतियां पनपती हैं। मोह और मद का प्रभाव तो इससे भी अधिक खतरनाक है।

आर्यिका आर्षमति माताजी ने कहा कि यदि हम गुरु चरणों में स्वयं को समर्पित कर दें तो सही रास्ता पकड़ सकते हैं, नर से नारायण, अरिहंत—सिद्ध बन सकते हैं। पौराणिक कथानक के माध्यम से बताया कि कामवासना के वशीभूत राजा जैसे श्रेष्ठ नर अपनी पुत्री पर मोहित होकर जिस पाप और लोकनिंदा का कार्य कर बैठते हैं, वह शराब के नशे से भी बुरा पाप व पतन का भागी है। पिता के द्वारा पीटा गया पुत्र, गुरु के द्वारा डांटा गया शिष्य और सुनार के द्वारा पीटा गया स्वर्ण आभूषण का ही रूप लेते हैं। बात सच्चे समर्पण की है जैसे बीज समर्पित होकर उपयोगी वृक्ष बन जाता है, माटी समर्पित होकर घड़ा बन जाती है। धर्मसभा में आना, बैठना, श्रवण करना व ग्रहण करना कभी निरर्थक नहीं जाता।

## 6

### भारतीय संस्कृति में आदर्श शिक्षक सदैव सम्माननीय

**शिक्षक दिवस : आचार्यश्री द्वारा राष्ट्र के  
समाज निर्माता शिक्षकों के लिए संदेश**

एक राष्ट्रपति ऐसे भी हुए जो शिक्षक से राष्ट्रपति बने। उनके आदर्शों की तासीर ऐसी थी कि उनका जन्म दिन शिक्षक दिवस के रूप में सम्पूर्ण राष्ट्र मनाता है और सभी सम्माननीय शिक्षकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है। इस चातुर्मास में गुजरात की राजधानी गांधीनगर में आध्यात्म की अविरल गंगा बहा रहे चतुर्थपट्टाचार्य परमप्रभावक दिगम्बर संत चर्याचक्रवर्ती आचार्य श्री सुनील सागरजी महाराज ने आज प्रातःकालीन प्रवचन सभा में शिक्षक दिवस की महत्ता पर अपना व्याख्यान शुरू करते हुए कहा कि

**“मुझको जमीं आसमां मिल गए,  
गुरु क्या मिले, भगवान मिल गए।”**

केवल भौतिक शिक्षा या लौकिक शिक्षा देने वाला ही गुरु नहीं कहलाता अपितु तपस्वी सम्राट सन्मति सागर जैसे विराट व्यक्तित्व के धारक आदर्श वात्सल्यमयी गुरु यदि मिल जाते हैं तो लाखों—करोड़ों जीवन संवर जाते हैं। दिगम्बर जैन साधु सिर्फ जैन समुदाय के लिए ही उपदेश रुपी अमृत वर्षा नहीं करते अपितु आदिवासी, ग्रामीण, शहरी विस्तार, स्कूल के विद्यार्थी, जेल के कैदी व जैनोत्तर समुदाय आदि सभी के लिए समान रूप से उनके कल्याण हेतु

वहाँ उपदेश देकर अनुग्रहीत करते रहते हैं ताकि वे लोग भी व्यसन व हिंसा आदि का त्याग करके स्वयं को व परिवार को विनाश से बचा सकें, जीवन को संवार सकें और अपनी आत्मा की उन्नति कर सकें। आत्मकल्याणी गुरु व्यावहारिक व लौकिक जीवन में रोशनी का अलख जगाते हैं।

साबरकांठा के सांसद दीप सिंहजी राठोड से आचार्यश्री ने पूँछा कि आप राजनीति में रहते हुए धर्मध्यान कब कर पाते हैं? तब सांसद महोदय ने गुरु को महिमा मंडित करने वाला सुन्दर उत्तर दिया कि जब कभी महीने छः महीने में आप जैसे कठोर तपस्वी के दर्शन हो जाते हैं तब हम स्वयं का चिंतन कर लेते हैं। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन स्वयं को पहले शिक्षक मानते थे फिर राष्ट्रपति, वे संस्कारमूर्ति व शाकाहारी थे एवं समाज के लिए आदर्श भी।

शिक्षक संस्कारों का पुंज होता है जो अपने आदर्श व्यवहार, निष्ठा व कर्मठता से समाज के लिए व देश के लिए सर्वशक्तिमान मानव शक्ति का निर्माण करता है। चाणक्य जैसे गुरुओं के उदाहरण हमारी आँखों से छिपे नहीं हैं। गुरु न सिर्फ सपने दिखाता है अपितु उन्हें पूरा कराने के लिए अपनी समस्त ताकत शिष्य को बनाने में झोंक देता है और उसकी सफलता में ही अतीव आनंद का अनुभव करता है।

आज की सभा में पधारे हुए संतरामपुर के विधायक डॉ. कुबेर भाई दिंदोर तथा प्रातःकालीन प्रवचन सभा में नियमित उपस्थिति देने वाले कड़ी के विधायक श्री के.पी. सोलंकी महोदय की भूमिका को लक्ष्य करते हुए आचार्यश्री ने कहा कि मात्र स्कूल में पढ़ाने वाले को ही शिक्षक नहीं माना जाता अपितु लोगों को नेतृत्व प्रदान करने वाला भी शिक्षक होता है जो समाज के विकास हेतु नई दिशा देता है। ऐसे में शिक्षक का आचरण आदर्श एवं अत्यन्त सावधानी भरा होना चाहिए क्योंकि दुनियाँ यह नहीं देखती कि उसने क्या कहा? अपितु उसने क्या किया? यह देखना एवं तदनुरूप अनुकरण करना पसंद करती है।

कुछ गैर जिम्मेदाराना शिक्षकों की हरकतों से समग्र शिक्षक समुदाय बदनाम हो जाता है। लापरवाही, प्रमाद व लालचवश शिक्षा को व्यापार बनाने वाले कुछ शिक्षक इस महिमामंडित शब्द को कलंकित कर देते हैं। शिक्षक दिवस वास्तव में शिक्षकों को सम्मान देने का दिवस है, उनकी अनुकम्पा के प्रति आभार प्रकट करने का दिवस है। हर स्कूल में से एक शिक्षक अवश्य बनना चाहिए क्योंकि हर शिक्षक डॉक्टर, अधिकारी आदि बना सकता है किन्तु कोई अधिकारी या डॉक्टर शिक्षक पैदा नहीं कर सकता जो अहिंसक समाज रचना में अपना जीवन होम कर सके। हमारे पुराने गुरुकुलों में शिक्षकों का ज्ञान, अध्ययन-अध्यापन की वृत्ति तथा तदनुरूप उत्कृष्ट आचरण शिक्षक की एक विशिष्ट पहचान थी जिससे शिक्षक पद की गरिमा कायम थी। आज हमें इसी ओर लौटना है और सही मायनों में व्यक्ति और समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होना है।

विश्व के पहले शिक्षक आदिब्रह्म आदिनाथ भगवान थे जिन्होंने अपनी दोनों सुपुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी को लिपि व अंक विद्या का ज्ञान दिया तथा भरत आदि अपने पुत्रों को भी लोकोपयोगी ज्ञान से सुशोभित किया। जन समुदाय को भी अहिंसक रूप से जीवन निर्वाह के लिए असि-मसि-कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि का ज्ञान प्रदान किया।

यदि कोई शिष्य गुरु शरण में समर्पित हो जाता है तो उसके जीवन में ऐसा परिवर्तन आ जाता है कि वह चारों ओर से निखर उठता है। आज यदि शिक्षक शिक्षा के अतिरिक्त बिन जरूरी प्रवृत्तियों से मुक्त कर लें तो शिक्षक की खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त की जा सकती है। शिक्षक अपने जीवन में आदर्श जीवन पद्धति अपनाएं मदिरा, मांस आदि व्यसनों का त्याग करें, सदाचारी एवं समाजोपयोगी बनें और ऐसे कार्यों से बचे जो हिंसा के कारण हैं। आचार्यश्री ने बताया कि कुछ लोग मरे हुए जानवर का मांस खाने में हिंसा नहीं मानते किन्तु उन्हें ज्ञात नहीं है कि कच्चे, पके और अधपके मांस के टुकड़ों में सतत उसी जाति के जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। डिब्बे बंद आहार में भी कोई सुनिश्चितता नहीं होती। आज सचमुच देश में क्रांति की आवश्यकता है जो युवाओं को शाकाहार का वैज्ञानिक स्वरूप समझाकर भ्रम की स्थिति से उबार सके और अहिंसक, सदाचारी समाज की रचना में अपना योगदान सुनिश्चित कर सके।

आज आर्यिका सूत्रमति माताजी ने अपने प्रवचन में समाधि प्राप्त मुनि तरुण सागर जी के संदर्भ में कुछ उपद्रवी तत्वों द्वारा उंगली उठाए जाने के समाचारों को जानकर क्षोभ व्यक्त करते हुए कहा कि ये वही लोग हो सकते हैं जिन्हें धर्म का सही स्वरूप नहीं मालूम। वस्तुतः मुनिश्री ने आगमानुकूल संयम पालते हुए उत्कृष्ट समाधि मरण किया है। आचार्यश्री ने भी कहा कि किसी के संयम पर ऐसी अशोभनीय टिप्पणी कदापि उचित नहीं। लोग चांद के दाग देखने लग जाते हैं किन्तु उसकी रोशनी को भूल जाते हैं। उन्हें साधु की कमजोरी दूर से दिख जाती है किन्तु उनकी कठोर साधना नजर नहीं आती। ऐसे तत्वों की संवेदनहीन हरकतों पर अंकुश लगना चाहिए ताकि धर्म की विराधना न हो।

## 7

### अणुव्रतों का पालन एवं आसक्तिरहित जीवन राष्ट्र के लिए वरदान

जैन धर्म में एक श्रावक और सही मायनों में एक सभ्य कहलाने वाले नागरिक को अपने जीवन में अणुव्रतों को यम नियम की भांति धारण करना जरूरी है। परम कृपालु आध्यात्म श्रेष्ठ, चर्याचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री

सुनीलसागरजी महाराज ने आज प्रातःकालीन प्रवचन सभा में जैन दर्शन में वर्णित सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रहाणुव्रत जो कतिपय भारतीय संस्कृति साहित्य के हर प्रमुख धर्म व नीति ग्रंथों में उल्लिखित हैं, के पालन की आवश्यकता को लेकर कहा कि यदि हर देशवासी श्रद्धा व ईमानदारी से इनका पालन करता है तो देश अनैतिकता, आतंकवाद, हिंसा, वैमनस्यता, विषमता, सामाजिक-आर्थिक असमानता आदि कई विकराल दूषणों से मुक्त हो सकता है। फिर हमारे देश में पुलिस व्यवस्था व न्याय व्यवस्था के लिए स्थापित तंत्र की जरूरतें बहुत घट जायेंगी, समाज अपराधमुक्त बन सकेगा तथा सर्वत्र सुख व शांति का वातावरण होगा।

अणुव्रती की जीवनशैली विषय का सरलीकरण व विस्तार करते हुए पूज्य गुरुवर ने पूर्वाचार्यश्री अमृतचंद्रजी आचार्य के एक प्रमुख परम उपकारी ग्रंथ पुरुषार्थ सिद्धि उपाय में वर्णित गाथाओं के संदर्भ को लेकर समझाते हुए कहा कि हम ऐसा कौनसा पुरुषार्थ करें जो सही हो और जो हमें लक्ष्य सिद्धि की ओर ले जाए? यह इस ग्रंथ का सार है। इसमें जो पुरुषार्थ करने योग्य बताया है वह 8 मूलगुणों को धारण करना तथा मधु, मांस, शराब, वड़, पीपल, ऊमर, कटूमर एवं पाकरफल आदि पंच उदम्बर फलों के त्याग को जीवन में शुद्धाचरण के रूप में शामिल करता है। पंच उदम्बर फल वृक्ष के मुख्यभाग से चिपके होते हैं जिसमें अनन्त जीवराशि होती है, स्वाद में ये फल कदाचित् मीठे भी लगते हैं फिर भी इसके सेवन में हिंसा का दोष होने से त्यागने योग्य हैं। ये उन फलों की अपेक्षा सघन जीवराशि युक्त होते हैं जो फल वृक्ष की टहनियों पर अलग से लटके होते हैं। कुछ लोग इन पंचउदम्बर फलों को धार्मिक विधि-विधान में उपयोग में लाते हैं किन्तु इसे भी उचित नहीं माना जा सकता क्योंकि किसी भी देवता या पवित्र आत्मा को जीवराशि भेंट स्वरूप अर्पित करने योग्य नहीं हो सकती। औषधि बनाने हेतु लोग इन्हें सुखाकर उपयोग में लाने की वकालत करते हैं। पर जरा सोचो कि जिसमें अनन्त जीवराशि सूखकर मर चुकी हो वह वस्तु कैसे उपयोग योग्य हो सकती है? कई बार इसमें विषैले जीव भी सूखकर मर जाते हैं तब इनके उपयोग से निरोगी होने की बजाए बीमारी और अधिक गंभीर हो जाती है।

आचार्यश्री कहते हैं कि अपना खान पान इतना संयमित, विवेकपूर्ण, शुद्ध व मर्यादित रखो कि बीमार होने की नौबत ही न आए। कई बार बाहर जाकर हम अपने शरीर की मर्यादा को भूलकर स्वाद में अथवा अन्य कारणों के चलते जरूरत से ज्यादा खा पी लेते हैं जिसमें अपना तो नुकसान करते ही हैं साथ ही दूसरों के लिए उन वस्तुओं का अभाव भी खड़ा कर देते हैं। यह किसी भी दृष्टि से एक सभ्य व्यक्ति या अणुव्रती के लिए शोभनीय नहीं है।

कन्दमूल के त्यागी किन्तु जिह्वा के लोलुपी, गुलाम आसक्तिवश तर्क देते हैं जब जमीन में उगने वाली हल्दी और अदरक को सुखाकर उपयोग करने में कोई दोष नहीं है तो आलू के चिप्स सुखाकर क्यों नहीं खाए जा

सकते? गुरुदेव पुनः समझाते हैं कि हल्दी आदि हमारे मसाले का भाग हैं। शायद बहुत कम लोग जानते होंगे कि भारतीय संस्कृति के परंपरागत ज्ञान भंडार में मसालों के औषधीय स्वरूप की कई महत्वपूर्ण बातें कही गई हैं जो आरोग्य व शुद्धता की दृष्टि से पूर्णतया वैज्ञानिक हैं। इन मसालों का प्रयोग कब, किस तरह और कितनी मात्रा में करना है? इसके नियत सिद्धांत एवं व्यवहार हैं जिसे हम अमल में ला रहे हैं किन्तु इसके पीछे की वैज्ञानिकता न समझ पाने से तर्क-कुतर्क करके पाप का बंध कर रहे हैं।

वस्तुतः वस्तु उपभोग की अतीव लालसा, इसके प्रति रहा हुआ राग ही वह आसक्ति है जो हमारा व्रत भंग कराती है। लेकिन क्रिया समान होने पर भी उस समय श्रावकों को संग्रहण का दोष नहीं लगता जब बेमोसम सब्जियों को सुखाकर माताएं संग्रह करती हैं। इस भेद को न समझने वाले मूढ़ लोग सूखी हुई मछली आदि में दोष न मानने का भी कुतर्क देने से नहीं हिचकिचाते।

गुरुदेव का कोमल हृदय क्षुधाशान्त हेतु की जा रही मूक प्राणियों की हिंसा से बेहद दुखी हैं, द्रवित है इसीलिए अपने हर व्याख्यान में इसका जिज्ञासु किए बिना नहीं रह पाते। शायद कभी मद्य, मांस, मधु इन तीन मकारों, अभक्ष्यों का भक्षण करने वालों की चेतना जागृत हो जाय और उपदेश सुनकर वे इनके वर्तमान व दूरगामी दुष्परिणामों से सावधान हो सकें। वे कहते हैं कि हमें अपने पर से अनुभव करना चाहिए कि मरने वाले जानवर के परिणाम भी बचाव का प्रयत्न करने के बावजूद कितने क्रुद्ध होते हैं, मारने वाले क्रूर व्यक्ति की तरह भले ही वह कुछ कर सकने की स्थिति में भले ही न हो किन्तु इसकी जहरीली रासायनिक प्रतिक्रिया उसके शरीर में अवश्य होती है। तो क्या वह उसके मांस का भक्षण करने वाले के आरोग्य को प्रभावित नहीं करती होगी?

राष्ट्र हित में वे (गुरुवर) शराब जैसे व्यसन की जागृति को लेकर चुप्पी नहीं साध पाते। वे शराब सेवन की बहुआयामी विभीषिका के बारे में बताते हैं कि आज शराब के नशे में धुत्त व्यक्ति न करने जैसा क्या कुछ नहीं कर बैठता? परिवार, समाज व राष्ट्र को किसी न किसी रूप में क्या इसका हर्जाना नहीं उठाना पड़ता? कई बार तो शराब में बढ़ते अल्कोहल के स्तर एवं प्रक्रिया में पनप चुके जहर के कारण असमय में मौतें भी होती हैं जिसका खामियाजा वह व्यक्ति ही नहीं अपितु उसका समूचा परिवार, समाज यहाँ तक कि आने वाली पीढ़ियों को भुगतना पड़ता है। अतः एक अणुव्रती एवं 8 मूलगुणों का पालन करने वाला श्रावक सदैव इन विकारों एवं विकृतियों से दूर रहता है इनमें आसक्ति व राग ही हिंसा तथा पाप का मूल है। ऐसे उपकारी गुरु हमें सदैव मिलते रहें जो उस सड़क की तरह है जो खुद तो वहीं रहती है किन्तु अपने पथिक को सही मंजिल पर पहुँचा देती है।

## 8

**चित्त पर नियंत्रण सर्व कल्याणकारी है**

हिंसा और अहिंसा के तत्त्व दर्शन को एक अलग नजरिए से देखने व विश्लेषित करके सरल रूप में रखते हुए आज प्रातःकालीन बेला में चारित्र्य चक्रवर्ती गुरुदेव 108 आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज ने अपने जन-कल्याणकारी संबोधन में कहा कि सुखी जीवन के लिए चित्त शुद्धि व चित्त की स्थिरता बहुत जरूरी है। चित्त का उलझना व्यावहारिक और आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टि से हिंसा की पर्याय है, यह अच्छी नहीं है क्योंकि इससे ईर्ष्या, जलन, द्वेष पैदा होते हैं जिनसे मन आकुल व्याकुल हो उठता है कि अमुक के पास इतना क्यों हैं, मेरे पास क्यों नहीं है? अथवा अमुक का बुरा हो जाय आदि नाना प्रकार की चित्त की उलझन ही हिंसा तथा घोर पाप का कारण है। एक बहुत ही प्रचलित कहावत है कि—

**फूंक मारकर दिए को बुझाया जा सकता है  
किन्तु अगरबत्ती को नहीं।**

दिया जलता है इसलिए वह बुझ जाता है जबकि अगरबत्ती अपनी धीमी सुगन्ध से समस्त वातावरण को महकाती रहती है। आचार्यश्री कहते हैं कि यहाँ जलने का अर्थ कुछ अलग अर्थात् जलन से लिया जाता है। यह जलन ईर्ष्या, राग-द्वेष रूपी वह दाह है जिसमें से उठता धुंआ हिंसा का आभास करा देता है, जलन के कारण इंसान का चेहरा बिगड़ जाता है और उसकी इंसानियत नष्ट हो जाती है, क्रोधादि कषायों में जलकर उसकी आन्तरिक व बाह्य शांति समाप्त हो जाती है। यदि साथ बैठे प्रतिष्ठित व विद्वान लोगों में से अमुक को सम्मान मिल गया और कुछ रह गए तो इस जलन के फलस्वरूप उत्पन्न दाह भले ही ऊपर प्रकट न हो किन्तु अन्दर ही अन्दर वह इसकी दुखद अनुभूति से त्रस्त हो उठता है।

घर परिवार में सास-बहू, पति-पत्नी जैसे नजदीकी रिश्तों में कलह व खटास पारस्परिक समझ की कमी इसी ईर्ष्या व द्वेष के कारण पैदा होती है। ग्रहस्थ और श्रावक की तो बात छोड़ो, यदि साधु संत समुदाय में भी ईर्ष्या जन्म ले ले तो साधुओं की भी तपश्चर्या व साधना दूभर हो जाती है, शांति छिन्न-भिन्न हो जाती है। किन्तु ज्ञानीजन स्थितिप्रज्ञ रहते हुए इस तरह की हिंसा से बच निकलते हैं और अपने परिणामों को शांत बनाए रखने में कामयाब रहते हैं।

आचार्यश्री ने आगम की एक कथा का उल्लेख करते हुए समझाया कि यह ईर्ष्या, जलन इतनी खतरनाक होती है कि पहले से स्थापित रिश्तों की मर्यादा और मानवीयता की तमाम हदों को पार कर जाती है।

कर्नाटक के सम्राट मितदेव जिनका पर्वर्तित नाम विष्णुवर्धन था के बड़े भाई वल्लालदेव की शादी तीन सगी बहनों से हो गई। संयोग से छोटी को पहले गर्भ रह गया। मेरा बेटा ही भावी राजा और राज्य का उत्तराधिकारी बने इस मोह, लालच के चलते उन बहनों में ईर्ष्या ठन गई। जिसमें न सिर्फ इस गर्भ को गिराने हेतु तमाम नीच क्रियाएं की गई अपितु संयोग ऐसे बने कि उनके पति वल्लाल देव को भी मृत्यु का ग्रास बनना पड़ा।

ये जलन तो इतनी हिंसक व खराब है कि सामने वाले के साथ साथ स्वयं का भी नाश कर देती है, व्यक्ति को इतना अंधा बना देती है कि वह देखकर भी कुछ भी देख नहीं पाता। चूहे-बिल्ली के इस खेल में यूं ही संसार बढ़ता जा रहा है। भगवान महावीर स्वामी जी ने श्रावक व ग्रहस्थ के अणुव्रत धर्म को श्रेष्ठ धर्म कहा है क्योंकि वह नौ प्रकार की हिंसा का एक देश त्याग करता है। जीवन यापन हेतु स्थावर जीवों की हिंसा होती है लेकिन वह इसमें भी संयम व मर्यादा का पालन करते हुए पूर्ण विवेक रखता है तथा त्रसकायिक जीवों की हिंसा से सदैव दूर रहता है। संमरंभ, समारंभ-आरंभ, मन वचन काय और क्रोध मान माया लोभ के परस्पर गुणाकार से वह 108 प्रकार की हिंसा का भागीदार बनता है।

जो हिंसादिक पाप हो जाते हैं उनके प्रायश्चित्त स्वरूप णमोकार मंत्र का जाप करना उसके लिए अनिवार्य बताया गया है। कुछ लोग कहते हैं कि अहिंसा से देश का पतन हुआ है, यह धारणा एकदम गलत है। विरोधी हिंसा के प्रावधान से देश का रक्षण होता है। कुमारपाल देसाई, सम्राट खारवेल, चन्द्रगुप्त मौर्य आदि प्रभावी शासक हुए हैं जिन्होंने देश हित के लिए आवश्यकता पड़ने पर शस्त्र भी उठाये। जैन दर्शन में जीविकोपार्जन व राष्ट्र की सुरक्षा हेतु व्यावहारिक दृष्टि से नैतिकता को बनाए रखते हुए विवेकपूर्ण विरोधी हिंसा का प्रावधान किया गया है। इससे उसे उद्योगी और आरंभी हिंसा का दोष तो लगता है किन्तु सम्यक्दृष्टि श्रावक संकल्पी हिंसा नहीं करता। इसका आशय कदापि यह नहीं है कि वह यह कहे कि मैं स्थावर की हिंसा करूँगा। अपितु ऐसी भावना सदैव भाता है कि जरूरतों की संतुष्टि में कम से कम स्थावर की हिंसा हो तथा त्रस जीव का घात न हो इसमें हर समय विवेक व सावधानी बनी रहे।

आचार्य भगवन् कहते हैं ये पाप और कषाय सबसे बड़े भयंकर रोग हैं जिनके उपचार हेतु माँ जिनवाणी की गोद और आचार्यश्री की कल्याणमयी वाणी सतत मिल सके ऐसा होस्पिटल चाहिए। जो लोग जीव को जीव नहीं समझते, वे लोक व्यवहार के विरुद्ध काम करके एवं भोगों में रत रहते हुए सुखी नहीं हो सकते। आज इनकी भोगादिक विषयों की पूर्ति हेतु आजीविका की नैतिकता का विचार बहुधा लोगों को नहीं आता। लोग प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से हिंसादिक साधनों से आजीविकोपार्जन से नहीं हिचकिचाते तथा कुतर्क करते हुए बड़ी ही

बेशर्मी से कहते हैं कि मैंने तो अमुक हिंसादिक या अनैतिक प्रवृत्तियों में मात्र पैसा ही लगाया है, उसकी हिंसा का दोष मुझे कैसे लग सकता है? आचार्य भगवन् कहते हैं कि अरे! मूढ़ जीव, उसी पैसे से तुम अपने उदर तथा विषयों की पूर्ति कर रहे हो तो पाप तो बराबर लगना ही है।

महात्मा गांधी साधन शुद्धि से ध्येय शुद्धि की बात करते हुए व्यावहारिक सत्य को सामने रखते हैं कि बबूल के पेड़ से आम प्राप्त नहीं हो सकते। आज पापाचार हिंसादिक कृत्यों में लिप्त आदमी किसी भी तरह बचने की गलियाँ निकालकर उसमें इस कदर डूब जाता है कि उसे पता ही नहीं चलता कि उसने कब जीवों का और अपने भावों का कितना नाश कर लिया?

आयुर्वेद में प्रभावी व कारगर अपचार हेतु रसायनों द्वारा उपचार किया जाता किन्तु जैन व अन्य प्रमुख सभी धर्मों में अहिंसा को एक ऐसा रामबाण रसायन कहा गया है जो आत्मा की दशा को निर्मलतम बनाता है, दुनियाँदारी की उस आकुलता-व्याकुलता को खत्म करता है जो औरों के साथ होड़, अति महत्वाकांक्षाओं की संतुष्टि हेतु उठाए गए आजीविका के पापरूप कर्मों को आश्रय देने के चलते उदय होती है। इसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

धर्म की रक्षा व नियमों की पालना के संदर्भ में गांधीजी और कस्तूर बा के जीवन प्रसंग का उदाहरण देते हुए आचार्यश्री ने कहा कि दक्षिण अफ्रीका में बा का स्वास्थ्य एकदम बिगड़ गया, डॉक्टर नें उनका जीवन बचाने हेतु मांस का शोरबा पिलाने की अनिवार्यता बताई। चूंकि बा होश में नहीं थी इसीलिए बापू से पूँछा गया लेकिन बापू ने कहा कि मैं कस्तूर से पूँछे बिना उसके मांसाहार त्याग का व्रत भंग नहीं करा सकता। होश में आने पर बा को मालूम पड़ा तब उन्होंने गांधीजी से कहा कि आपने बिल्कुल सही निर्णय लिया क्योंकि कोई भी जीवन व्रत संकल्प से बढ़कर नहीं होता।

अहिंसा से हमारी आत्मा के चारित्र का निर्माण होता है। हिंसा तो पाप का ऐसा ढेर है इसके नीचे दबकर कब ढेर हो जाएं पता ही नहीं लगता। पापरूप आजीविका में मेज के नीचे से गांधीछाप धन आ सकता है, भौतिक समृद्धि दिख सकती है किन्तु मन की शांति कोसों दूर रहती है तथा जीव अपने ज्ञान स्वरूप का अनुभव नहीं कर पाता। अहिंसा से भाव शुद्धि होती है जो अंदर भी दिखती है और बाहर भी। अमेरिका जैसे विकसित देश जहाँ हिंसादिक साधन अधिक हैं वहाँ सहनशीलता कम है व्यवहार में लोग जरा-जरासी बात पर उनका उपयोग करने से नहीं कतराते, नजदीकी संबंधों का भी लिहाज नहीं करते जबकि अहिंसा परिणामों व पर्यावरण की रक्षा में अहम् भूमिका निभाती है।

आज मुनिश्री सुश्रुतसागरजी ने एक रूपक के माध्यम से गुरु महिमा का गुणगान करते हुए कहा कि गुरु आश्रय एक अस्पताल है जहाँ दुर्भावनाओं,

राग—द्वेष, कषाय आदि केंसर से पीड़ित व्यक्ति का गारंटी के साथ उपचार होता है। इसके कुशल डॉक्टर आचार्य भगवन् श्री सुनीलसागरजी महाराज हैं, उनके आशीष रूपी वट वृक्ष की छत्र—छाया में जो आनंद व शुक्ल प्राप्त होता है वह कहीं और नहीं मिलता। जब वात्सल्य से जरा मुस्कुरा देते हैं तो सभी दुख, संताप पलायन कर जाते हैं। इन गुरु दरबार में अपूर्व सुख शांति मिलती है।

## 9

# उत्कृष्ट साधना, तपश्चर्या व सहजता की मूर्ति आचार्यश्री शांतिसागर

**चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री शांति सागरजी महाराज की  
63वीं पुण्यतिथि पर विशेष व्याख्यान।**

इस संसार में कुछ लोग जन्म लेते हैं पेट भरने के लिए, कुछ लोग जन्म लेते हैं पेटी भरने के लिए, कुछ लोग जन्म लेते हैं कुछ करने के लिए तथा प्रभु महावीर स्वामी और शांति सागरजी जैसी विभूतियां जन्म लेती हैं भव सागर से तरने के लिए।

दिगंबर जैनाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागरजी महाराज की 63वीं पुण्यतिथि पर अपने उद्गार व्यक्त करते हुए आज प्रातःकालीन प्रवचन सभा में चर्याचक्रवर्ती गुरुदेव 108 आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज ने सर्व प्रथम गुजरात राज्य के कडी क्षेत्र के विधायक श्री के.पी. सोलंकी जी के भावसहित पाद प्रक्षालन करने पर उन्हें आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा कि वे लोग अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं जो रोजमर्रा की भागमभाग की जिंदगी एवं व्यस्त कार्यक्रमों में से समय निकालकर धर्मसभा में बैठने हेतु समय देकर समय का सदुपयोग करते हैं और माँ जिनवाणी का भाव सहित श्रवण कर अपने आचार—विचारों को श्रेष्ठ बनाने का पुरुषार्थ करते हैं।

गुरुदेव ने आज आचार्यश्री शांति सागरजी महाराज की पुण्य तिथि पर उनके जीवन के कुछ संस्मरणों को सामने रखते हुए कहा कि सही मायनों में पुण्यतिथि उनकी होती है जिनका जीवन भी मंगलय रहा हो और मरण भी मंगलमय। मरते तो सभी हैं किन्तु पुण्य के साथ वही मरता है जो अंत समय तक संयमी रहा हो। एक संयमी का मरण पुण्यतिथि बनकर सबको प्रेरणा देता है।

जैनागम के महान आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामीजी ने आज से 2000 वर्ष पहले लिखा था कि पंडितमरण, शांतिपूर्वक मरण अति उत्तम है जो भव पार कराता है। लगभग 900 साल पहले आचार्यश्री समन्तभद्रजी ने भी लिखा कि

उपसर्ग आदि आने पर, दुर्भिक्ष आदि आपदाओं के उत्पन्न होने पर, शरीर शिथिल हो जाने पर, शरीर की इन्द्रियों के साथ न देने पर तथा जरा-रोग आदि के सताने पर प्राणों का मोह त्याग कर संत्लेखना सहित पंडित मरण धारण कर लेना चाहिए।

आचार्यश्री शांतिसागरजी ने 84 वर्ष (जन्म सन 1972 तथा समाधि 18.9.1955) के अपने जीवन में 41 वर्ष तक के गृहस्थ जीवन और तत्पश्चात् के साधु जीवन में उत्कृष्ट साधना की। आचार्य श्री शांति सागरजी के संयममय उदार जीवन का जैन धर्म के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने सन् 1913 में क्षुल्लक दीक्षा ली, परमपूज्य आचार्यश्री आदिसागर (अंकलीकर) जी से ऐलक दीक्षा ली तथा 1920 में आचार्यश्री देवेन्द्रकीर्तिजी से मुनि दीक्षा ली और 1924 में आचार्य पद प्राप्त किया। 19 अगस्त, 1955 को संत्लेखना धारण कर 36 दिवस उपवास की कठोर साधना करते हुए नश्वर शरीर का उत्सर्ग कर पंडित मरण को प्राप्त किया। कहते हैं कि जब 100 जन्मों का पुण्य संचित होता है तब मानव जन्म मिलता है, 1000 जन्मों का पुण्य हो तो जैन कुल मिलता है, लाखों जन्मों का पुण्य हो तो देश संयम मिलता है, असंख्य जन्मों का पुण्य हो तो सकल संयम मुनिधर्म अंगीकार करने का अवसर मिलता है तथा अनन्त जन्मों का पुण्य हो तो सहजता से समाधिमरण मिलता है।

जैन धर्म के विकास में 19वीं सदी में उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने कठोर जिन साधना की भूली बिसरी परम्पराओं को पुनःजागृत किया और प्रतिष्ठा दिलाई। उन्होंने दक्षिण से उत्तर की ओर सघन वनों से विहार करते हुए सम्मेद शिखर तक की यात्रा कर जैन धर्म की प्रभावना की। रास्ते में कई उपसर्गों को शांति भाव से सहा। एक बार राजस्थान के राजाखेड़ा के कुछ उत्पाती लोगों ने आचार्यश्री को मारने, घायल करने की योजना बनाई। अंत समय में एक श्रावक को उसकी भनक लग गई। उसने मुनिश्री को कमरे के अंदर धकेलकर बाहर से कुंडी लगाकर उन 50 सशस्त्र उपद्रवियों का बड़े ही साहस से मुकाबला करना शुरू कर दिया। कुछ समय पश्चात् अन्य लोग व पुलिस के आने से उनका सरगना पकड़ा गया किन्तु गुरुदेव ने उसे माफ कर देने को कहा। उदारता एक तरह का परम सुख है। उनके जीवन में भरपूर उदारता थी।

आचार्य शांति सागरजी का गृहस्थ जीवन भी सरल था उनके हृदय में अपार करुणा थी। उनके माता-पिता अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के थे, सहज थे, अतिथि का योग्य सम्मान करते थे, देव दर्शन के बिना भोजन आदि ग्रहण नहीं करते थे। आपके मुनि बनने में वे कभी अवरोधक नहीं बने किन्तु एक भावना इस पुत्र के समक्ष रखी थी कि तुम मेरा योग्य समाधि मरण कराकर ही दीक्षा लेना। वास्तव में आपके पिताजी ने शरीर को शिथिल जान संयमपूर्वक धीमे धीमे आहार आदि का त्याग करके सुखद समाधिमरण को प्राप्त किया।

गृहस्थ जीवन में पूज्य आचार्य आदिसागरजी अंकलीकर को आहार कराकर नदी पार कराते हुए भावना भाते थे कि इसी तरह आप मुझे भव पार करा दे, जो अंततः सच साबित हुई। गृहस्थ जीवन की साधुता व पवित्र करुणामयी भावना का एक प्रसंग है—

जब वे अपने खेत की पकी फसल की रखवाली के लिए जाते थे तब पक्षी उस पर बैठकर आराम से अपनी उदरपूर्ति करते थे और वे उन्हें किसी भी तरीके से उड़ाते नहीं थे। उनका पड़ौसी कहता कि इससे तुम्हारा बहुत नुकसान होगा वे कहते कि कोई बात नहीं मेरे भाग्य में होगा उतना मुझे अवश्य मिलेगा। सचमुच जब फसल कटी तो उनका प्रति बीघा प्राप्त उत्पादन पड़ौसी से दुगना था।

आचार्य श्रीसुनीलसागरजी महाराज ने कहा कि हमारी भारतीय संस्कृति में शुभ—लाभ लिखने की पुरातन परंपरा है जिसका कतिपय निहितार्थ है— पहले शुभ बाद में लाभ। अर्थात् जिस लाभ का अर्जन हम करना चाहते हैं उन प्रवृत्तियों में शुभ का तत्त्व विद्यमान होना चाहिए। आजीविकोपार्जन नैतिक तरीके से व धर्मसम्मत होना चाहिये। एक उदाहरण के माध्यम से उन्होंने कहा कि सामाजिक व्यवहारों में भी शुभ पहले और लाभ बाद में आता है।

एक घर में लड़के वाले रिश्ते को पक्का करने आते हैं। लड़की पसंद आने पर वे कहते हैं कि चलो अब लेन—देन की बात कर ली जाय। लड़की के पिता का खून सूख जाता है इस तरह की मांग को सुनकर। लेकिन लड़के वाले ने कहा कि आप अपनी गुंजाइश के अनुसार ही शादी करना, कर्ज लेकर नहीं। क्योंकि बहू लक्ष्मी होती है और हम कर्ज की लक्ष्मी लेकर अपने घर नहीं जाना चाहते। कितने शुभ विचार! यदि सभी जन इसे स्वीकार लें तो कई सारी सामाजिक, आर्थिक और मानसिक समस्याओं का स्थायी समाधान मिल जायेगा और तब शुभ भी होगा और लाभ भी।

आचार्य शांतिसागरजी की करुणा का गृहस्थ जीवन का एक और प्रसंग याद करते हुए गुरुदेव सुनील सागरजी ने कहा कि—एक बार वे सम्मेलनशिखरजी की यात्रा को गए। पहाड़ पर अकेली कमजोर, गरीब, बूढ़ी मां मिली। उससे सहायता के लिए पूछा। मना करने पर भी उसे अपने कंधे पर बिठाकर पूरी वंदना कराई। उन्होंने बालविवाह आदि कुप्रथाओं का भी विरोध किया हालांकि उनका स्वयं का विवाह 9 वर्ष की आयु में हो गया था उस समय उनकी पत्नी की उम्र मात्र 5 वर्ष थी जो अल्पआयु में ही मृत्यु को प्राप्त हो गई। बाल आयु में उनके लिए इस विवाह का मतलब खेलने के लिए साथी के मिलने जैसा था, संसार बढ़ाने या भोग विलास करने का नहीं। आज धर्म के नाम पर पशुबली जैसी कई विकृतियां प्रचलित हैं। जिन्हा के लोलपी मूढ़ लोग इसे बढ़ावा देकर हिंसादिक प्रवृत्तियों को बढ़ावा दे रहे हैं इसका रुकना जरूरी है।

## 10

## जीवदया ही सच्चा धर्म

जीव दया संसार का सबसे महान धर्म है। इसका महत्व बताते हुए परम उपकारी गुरुदेव 108 आचार्य श्री सुनील सागर जी महाराज ने कहा कि जैन एवं भारतीय संस्कृति में ऐसे कई महान लोग हुए हैं जिन्होंने जीव दया की महिमा बताई है, स्थापित की है। प्रभु महावीर ने दुनियाँ को अहिंसा का संदेश दिया, भगवान पार्श्वनाथजी ने जलते हुए नाग-नागिन को बचाकर उनका जीवन सुधारा, हरिवंश के श्रीकृष्णजी के चचेरे भाई नेमिनाथजी ने पशुओं के क्रंदन को सुनकर और यह जानकर कि उनकी बरात में आए अमुक बारातियों के भोज में वे निरीह पशु काम आयेंगे, उनका हृदय द्रवित हो उठा, तोरण से ही रथ को मोड़ दिया और वैराग्य धारण कर गिरनार चले गए। धिक्कार है ऐसे आयोजनों पर जिसमें वे जीव हिंसा व पाप का निमित्त बन रहे हैं। योगीश्वर कृष्ण का पशु प्रेम प्रसंशनीय है वे हमेशा गाय माता के मध्य सुशोभित होते रहे हैं। लेकिन आज अज्ञानी व मूर्ख लोग मन्नतो आदि को पूरा करने के लिए पशुबलि देते हैं, कुछ बीच का रास्ता निकालकर दूसरों के माध्यम से यह कुकृत्य कराते हैं, यह मानकर कि इससे मुझे कोई पाप नहीं लगेगा और कुछ इस तरह के कृत्य की अनुमोदना मात्र से पाप के भागी बनते हैं। अरे! कितने क्रूर व मूर्ख लोग हैं जिन्हें अपनी जान तो प्यारी लगती है किन्तु दूसरों की जान को स्वयं के समान नहीं समझते। कुछ तो यहाँ तक तर्क-वितर्क करने लग जाते हैं कि घासफूस व वनस्पति के उपयोग में भी तो पाप है। इसके लिए आचार्य श्री अमृतचंद्राचार्य जी आगम सम्मत विधान बताते हुए कहते हैं कि श्रावक जिन वनस्पतियों का सेवन करता है वे प्रायः पकी हुई होती है यदि वे उपयोग में न लाई जायं तो कुछ समय में ही नष्ट हो जायेंगी इसलिए इनके उपयोग में पाप नहीं।

गुरुदेव कहते हैं कि इस तरह के कुतर्क के बाद भी पशुबलि, अबोल पशुओं की हत्या किंचित भी उचित नहीं। बताइए कि कौन सी ऐसी माँ होगी या देव होगा जो अपनी ही संतति की बलि लेकर प्रसन्न होगा? वस्तुतः यह तो स्वार्थी व पाखंडियों का बिछाया जाल है जिससे वे अपनी जिह्वा की निकृष्ट इच्छा पूर्ति हेतु लोगों को भ्रमित करने में लगे रहते हैं। बलि का सही अर्थ है—अपनी सर्वोत्तम व श्रेष्ठ वस्तु का समर्पण। पशुबलि तो मिथ्या है, धर्म नहीं क्योंकि धर्म तो आत्मा की सहजता और निर्मलता से उत्पन्न होता है।

आचार्य श्री कहते हैं कि जीवदया और शाकाहार के बीच सीधा संबंध है। जो लोग तर्क करते हुए मांसाहार को सस्ता बताते हैं उनको इस दृष्टांत के द्वारा सार रूप में समझाते हुए परम उपकारी आचार्य गुरुदेव कहते हैं कि—

एक बार राजा श्रेणिक के दरबार में इस विषय पर चर्चा चली। अभय कुमार ने पक्ष रखा कि मांसाहार न सिर्फ खराब है अपितु मंहगा भी है। कुछ जड़ बुद्धि मंत्री इस कथन से सहमत नहीं हुए और कहा कि सिद्ध करके दिखाओ। उसी रात नियत योजना के तहत अभय कुमार उन मंत्रियों के घर बारी बारी से पहुँचे और कहा कि राजा की तबियत अचानक बिगड़ गई है उनके त्वरित स्वास्थ्य लाभ के लिए अच्छे व्यक्ति के हृदय के 5 ग्राम मांस की आवश्यकता वैद्य ने बताई है अतः आप अभी मांस दे दे और इसके लिए 1000 सोने की मोहरें दी जायेंगी। सभी का एक ही जबाब था कि हम इस तरह से असमय में अपनी मृत्यु को प्राप्त होना नहीं चाहते। आप कितनी ही कीमत क्यों न दें हम अपना मांस नहीं दे सकते। अगले दिन दरबार से सभी के सामने हकीकत बयां हुई। शाकाहार ही सस्ता व उत्तम आहार है, की दलील के सामने सभी नतमस्तक हो गये। उन्होंने कहा जिस तरह आपको अपने प्राण प्यारे हैं उसी तरह पशु-पक्षियों को भी अपने प्राण प्यारे होते हैं। इसलिए जीवदया रखकर सात्विक आचरण करना ही मानव धर्म है। आज हम हिंसादि का विचार किए बिना होटलों में कितनी ही अनदेखी वस्तुएं खा जाते हैं कदाचित् होटल में मांसाहार करने वालों को पशुओं की चीत्कार का अंदाजा नहीं आता होगा लेकिन जहाँ शाकाहार और मांसाहार दोनों प्रकार का भोजन मिलता हो, उसका भी हमें दृढ़ता के साथ हर परिस्थिति में सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।

समाज में चाटुकारों के प्रभाव में भी इस तरह की विकृतियां पनपती हैं जिसे भारतीय लोक संस्कृति के इस कथानक से आचार्य भगवन् ने समझाने का प्रयास किया कि—

एक राजा के यहाँ चाटुकार पंडित था वह राजा को धर्मोपदेश के नाम पर वही कहता था जो राजा को प्रिय लगता था, कभी वह उसे सही रास्ता नहीं दिखाता था। एक बार अपनी अनुपस्थिति में उसने अपने पुत्र को धर्मोपदेश देने के लिए राजा के पास भेजा और कहा कि कोई गड़बड़ मत करना सावधानी रखना। किन्तु वह बालक बुद्धि उसका गूढ़ार्थ नहीं समझ सका और राजा से पुराण में लिखे अनुसार कह बैठा कि राजन् “जो इतना सा मांस खाता है वह सातवें नरक में जाता है।” जिरह करने पर उसने राजा को साक्ष्य भी दिखा दिया किन्तु उस मांसाहारी राजा को वह सत्य भी नहीं रुचा और उसने उसे कारागार में डलवा दिया। पंडित को मालूम पड़ा तो राजा के पास दौड़ता हुआ आया और उसे इस तरह से भ्रमित किया और

समझाया कि महाराज मेरे पुत्र ने सही कहा था, पुराण में भी सही लिखा था कि इतना सा मांस खाने पर सातवां नरक मिलता है किन्तु आप तो महाराज थाली भरकर खाते हैं इसलिए यह विधान आप पर कहाँ लागू पड़ता है? सचमुच कैसी दीन दशा है ऐसे स्वार्थी लोगों की? जो “हम तो डूबेंगे और तुम्हें भी ले डूबेंगे” की युक्ति को चरितार्थ करते हुए पतन के गहरे गर्त में निश्चित तौर पर गिरते ही हैं।

आचार्यश्री ने मात्र समस्या पर ही नहीं अपितु इनका समाधान किस तरह से मिल सकता है उस पर प्रकाश डालते हुए कुछ सत्य घटनाओं को समाज के सामने रखा। मध्य प्रदेश के खरगौन में एक बार समुदाय के समुदाय विशेष के सदस्यों को ठीक तरह से समझा कर तथा पुलिस प्रशासन के हस्तक्षेप से मूक पशुओं की बलि को रोका गया। मध्यप्रदेश के एक भईया मिश्रीलाल गंगवाल मुख्यमंत्री ने तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी की विदेशी मेहमानों को मांसाहार आदि से खुश करने की इच्छा को नजरअंदाज कर उन्हें शाकाहार कराकर संतुष्ट किया वह भी किसी नुकसान की परवाह किए बिना। जबकि आज विविध प्रकार की बहानेबाजी के तहत पशुओं को कत्ल करने से लंपट लोग बाज नहीं आते।

इंदौर की एक और घटना का जिक्र करते हुए कि अच्छी तरह से समझाने बुझाने पर सकारात्मक परिणाम मिल ही जाते हैं, कहा कि एक बार विशिष्ट अतिथि सैयादाना जी के स्वागत भोज में मांसाहार का आयोजन होना था। गुरुदेव की प्रेरणा से समाज के लोग उन अतिथि महोदय से मिले और उन्हें जीवदया के बारे में समझाया। वे मान गये उन्होंने अपने आयोजकों को भी समझा दिया और इस तरह से कई सारे पशु जान गंवाने से बच गए। वास्तव में ये प्रयास हम सभी की थोड़ी सी जागृति और करुणा के माध्यम से हो सके हैं।

आचार्यश्री ने कहा कि आज लोग व्यापार, आजीविका आदि प्रवृत्तियों में अनीति व हिंसा का विचार नहीं करते। उनकी यह कमाई अस्पताल आदि में ही नष्ट हो जायेगी उनका इह और परलोक दोनों बिगड़ जायेंगे। अशुद्ध वस्तुओं का सेवन मन में विकार उत्पन्न करता है। हम किसी भी रूप में पशुबलि का समर्थन न करें तथा पर्युषण दरम्यान विशुद्ध अहिंसा धर्म का पालन करें ऐसी मंगल कामना के साथ शुभ आशीर्वाद प्रदान किया।

प्रवचन के आरंभ में संघस्थ मुनिश्री सर्वार्थसागरजी महाराज ने कहा कि जैन कुल में जन्म लेने मात्र से कुछ नहीं हो जाता हम जैन कहलाने के अधिकारी नहीं बन जाते जब तक कि हम उसके अनुरूप आचरण को जीवन में न उतारें और अणुव्रतों का श्रद्धा से पालन न करें।

## 11

## मानवता एवं अहिंसा सिंचन के लिए मुनिकुंजर आचार्यश्री आदिसागर

परमपूज्य आचार्य श्री आदिसागर अंकलीकरजी की जन्म जयंती के अवसर पर उपस्थित गुजरात के पानी पुरवठा विभाग के राज्यमंत्री श्री परबतभाई पटेल को आचार्यश्री सुनीलसागरजी ने “धर्ममना” उपाधि प्रदान कर आशीर्वाद प्रदान किया। इस अवसर पर श्री परबतभाई पटेल ने कहा कि वर्तमान समस्याओं के निवारण के लिए आचार्यश्री सुनीलसागर महामुनिराज की आवश्यकता है।

आज मुनिकुंजर आचार्य श्री आदिसागरजी महाराज की जन्म जयंती पर उपस्थित पानी पूरवठा विभाग के राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार) श्री परबतभाई पटेल ने बहुत ही मार्मिक उद्बोधन देते हुए कहा कि जिन शासन सर्वोत्तम है, यह प्रभु महावीर का बताया हुआ मार्ग है, अहिंसा व दया का धर्म है जिसे आचार्य भगवन् कठिन समस्या व साधना के चरित्र द्वारा जन जन तक पहुँचा रहे हैं। जैन भले ही संख्या में कम हो किन्तु उनके द्वारा किए जाने वाले कल्याणकारी कार्य महान हैं। यहाँ उन अबोले पशुपक्षियों के लिए गौशालाएं बनाई जाती हैं जो कि अनुत्पादक व लाचार बन गए हैं जबकि अन्य समाज के लोग उनका उपयोग जरूरतों की संतुष्टि के लिए कर रहे हैं। इतिहास साक्षी है कि जैन समाज ने आपत्तियों के समय अपने भंडार खोलने में हमेशा उदारता दिखाई है। यह सत्य है कि यदि राजशासन धर्मशासन द्वारा निर्देशित रहे तो समाज में विकृतियां नहीं आती।

आचार्यश्री सुनीलसागरजी ने मंत्री महोदय को उनकी इस तरह की उत्कृष्ट धार्मिक भावना एवं सहज आचरण के चलते सार्वजनिक मंच पर “धर्ममना” की उपाधि से विभूषित करते हुए कहा कि इतना सुन्दर व्याख्यान कदाचित् कोई जैन नेता भी नहीं देता जो उन्होंने श्रद्धा और विश्वास के साथ प्रेम व दया की भारतीय व जैन संस्कृति के पक्ष में निर्मल मन से दिया। भारतीय संस्कृति “सर्वे भवन्तु सुखिनः” का जयघोष करती है जिसमें मानवों के साथ साथ सभी निरीह प्राणी भी शामिल है। हमारी संस्कृति में गाय को माता कहकर स्नेह दिया जाता है तो कुत्ते को वफादार मानकर प्यार। फिर किस आयातित संस्कृति ने आज भ्रमित व्यक्तियों के मन में इतनी क्रूरता भर दी कि उदरपूर्ति व स्वार्थवश अपने दयाभाव जैसे अनमोल रत्न को खोते जा रहे हैं। जबकि इस प्रेम में अपार शक्ति है कि गाय का बच्चा जन्म लेने के 2 घंटे में उठकर खड़ा हो जाता है। जानते हो क्यों? क्योंकि उसकी मां चाटकर, दुलार कर इतना प्यार देती है कि वह आत्मविश्वास व अहिंसा की ताकत से खड़ा हो

जाता है। मंत्रीजी ने जैन साधुओं की कठोर साधना— एक बार भोजन, पैदल विहार, अपरिग्रह, विविध प्रकार के परीषहों को सहना, तथा लोकहित में निर्भीकता से अहिंसा की क्रांति का बिगुल बजाने जैसे कार्यों के प्रति नतमस्तक होते हुए कहा कि आप सभी आदरणीय एवं भगवान महावीर व बुद्ध की अहिंसा के सच्चे वाहक हो जो समाज के उत्थान के लिए अंधरे में रोशनी की किरण दूढ़ रहे हो उन्हें सद्मार्ग पर ले जा रहे हो। इससे भटके हुए लोग सही मायनों में इंसान बन सकते हैं।

आचार्यश्री सुनीलसागरजी तो विविध धर्मों के आचार्यों के साथ अहिंसा के प्रसार के लिए खुले मन से चर्चा करते हैं और सामूहिक समझ विकसित करके व्यावहारिक समाधान का सतत प्रयास करते रहते हैं। आज उन्हीं की परंपरा के आदिगुरु मुनिकुंजर आचार्यश्री आदिसागरजी महाराज का 153वां जन्म दिवस है जिनके आदर्श आचरणों व शिक्षाओं को जानकर, समझकर मन गद्गद हो उठता है कि वे कितने परम उपकारी संत रहे कि उन्होंने गृहस्थ और साधु दोनों ही जीवन में आदर्शों के कीर्तिमान स्थापित किए। आचार्य गुरुवर सुनीलसागर जी ने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि

**“गुरु का आशीष शिष्य को ऊँचा उठा देता है।**

**लोगों की पलकों पर तो ठीक, सिद्धालय में बिठा देता है।”**

जैसे श्री राम को गुरु वशिष्ठ, श्रीकृष्ण को गुरु संदीपनी मिले उसी प्रकार हमें आत्मकल्याणी आदिसागरजी गुरुदेव प्राप्त हुए जिनकी परंपरा में आचार्य महावीर कीर्ति, तपस्वी सम्राट सन्मति सागरजी हुए जिन्होंने सात्विक संस्कृति की रक्षा की। यदि सभी श्रावक अणुव्रतों को जीवन में स्थान दे दें तो शासन को पुलिस व न्याय व्यवस्था की आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी। प्रभु महावीर ने सत्य की शोध में और उसे लोगों तक पहुँचाने के लिए राजसी ठाठवाट छोड़ संयममय साधना का कठिनपथ अंगीकार करके अपनी आत्मा को तपाकर कुंदन व विशुद्ध बनाया।

परम कृपालु आचार्य मुनिकुंजर आदि सागरजी का गृहस्थ जीवन भी अतीव करुणा, दया, साहस व वैराग्य से भरा हुआ था। सांगली के एक छोटे से गांव अंकली में जन्मे समृद्ध किसान जो पशुपक्षियों की दया के चलते कभी नफा नुकसान के गणित में नहीं पड़े, कभी पक्षियों को फसल चुंगने से नहीं रोका, दुर्भिक्ष के समय अपने अन्न के भंडारों को लोगों के लिए उदारता के साथ खोल दिया, फिर भी पूर्ति न होने पर अन्य श्रीमंतों से सहयोग की अपील की, समाधान न मिलने पर जरूरतमंदों के साथ खड़े रहकर उन्हें उदर पूर्ति के लिए जरूरत का अन्न उठा लाने तक को कह दिया और इसके चलते उन पर कोर्ट केस भी चला। संकटों से घबड़ाए नहीं अपितु वैराग्य की ओर कदम बढ़ाते गए। कम उम्र में पिता की मृत्यु, कुछ ही समय बाद माता का साया उठ जाना, छोटे बच्चे और पत्नी की असमय में मृत्यु। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि

कोई श्रावक अपनी पत्नी का योग्य रूप से समाधिमरण घर पर करा सकता है किन्तु आपने ऐसा कर दिखाया। तत्पश्चात् अपनी बहन के पास अपना सभी कुछ देकर और बच्चों के पालन की जिम्मेदारी छोड़ कुंथलगिरि पर केशलोंच कर आध्यात्मिक विकास के शिखर पर कदम रख दिया। कहते हैं कि उस समय बहुत जोर से दुंदभि बजी थी जो नीचे खड़े लोगों को सुनाई दी किन्तु जब वे उपर शिखर तक गए वहाँ कोई वाद्ययंत्र नहीं था। यह ऐसे भविष्य के स्वागत का शंखनाद था जो सोते हुए जगत को जगाने और महावीर की शिक्षाओं के प्रति विश्वास पैदा करने के लिए इस पथ पर अविरल बढ़ने के लिए कृत संकल्प हो चुका था। गृहस्थ जीवन में आचार्य शांति सागरजी आहार चर्या के बाद अपने मजबूत कंधों पर बैठाकर नदी पार कराने वाले इस श्रावक की भव सागर तरने की भावना तरणतारण बनने के सशक्त साधक के रूप में पूरी हो गई। जीवन भर गुफा कंदराओं में कठोर साधना, 7 दिन उपवास और एक दिन आहार यहाँ तक कि 14 दिन के सुखद उपवास के साथ ऊदगांव कुंजवन में समाधिस्थ होकर इस नश्वर शरीर का निर्विकल्प रहकर त्याग कर दिया। गुरुदेव ने छोटे छोटे गांवों में भी विहार करते अनेक लोगों को वैर-क्लेश आदि से मुक्ति दिलाई और उन्हें सन्मार्ग में लगाया।

आचार्यश्री ने कहा कि यह एक अच्छा संयोग है कि गणेश चतुर्थी के दिन मुनिकुंजर आदिसागरजी महाराज का जन्म दिन भी है। सभी को गणेश चतुर्थी की शुभकामनाएं देते हुए गुरुदेव ने कहा कि जिस तरह महावीर प्रभु की शांति मुद्रा से हम प्रेरणा लेते हैं उसी प्रकार हम गणेश की मूर्ति से अर्थात् उन्नत ललाट से बुद्धि व प्रज्ञा, लंबी नाक से परस्पर सम्मान, छोटी आंखें— दोषों को न देखना, बड़ा पेट— अर्थात् दूसरों के रहस्यों को पचा लेना, बड़े कान दूसरों को सुनना तथा छोटा सा वाहन चूहा भी यह संदेश देता है कि हमें कम से कम संसाधनों में रहते हुए अपनी जरूरतें पूरी करके संतुष्ट रहना चाहिए।

## 12

### जो काम सुई से हो सकता है उसके लिए तलवार उठाने की जरूरत नहीं

गुजरात की राजधानी गांधीनगर में चातुर्मास के दरम्यान प्रातःकालीन प्रवचन में मानव जीवन में व्यावहारिक रूप से अति उपयोगी मुद्दे पर परम पूज्य आचार्यश्री सुनीलसागरजी ने कहा कि जो काम सुई से हो सकता है उसके लिए तलवार उठाने की आवश्यकता नहीं है। सुई और कैंची दोनों एक ही लोहे से बनी हैं। सुई सीने का और जोड़ने का काम करती है जबकि कैंची काटने और तोड़ने का काम करती है। जो समाज को सुई के समान जोड़ने का काम करते हैं समाज उनको सिर आँखों पर बिठाता है और तोड़ने के काम में लगे

होते हैं उन्हें समाज दुत्कार देता है। हमें अपने जीवन को सुई जैसा बनाना है। सुई और कैंची दोनों का उपयोग करने वाले दर्जी के व्यवहार से सीख लेकर हमें अपने जीवन को सही दिशा देनी है।

हम सभी ने प्रायः देखा होगा कि दर्जी सुई को काम करने के पश्चात् अपनी टोपी अथवा पगड़ी में टांक लेता है जबकि कैंची को पैर के नीचे दबाकर रख लेता है। यदि सुई को पगड़ी के स्थान पर पैर के नीचे रख लिया जाय तो उसे जोड़ने का अवसर नहीं मिलेगा और यदि इसी तरह कैंची को पैरों के स्थान पर पगड़ी पर बिठा लिया तो उससे सिर फूटने या पैर आदि अंग-भंग होने की संभावनाओं को नकारा नहीं जा सकता था।

मानव के शरीर में जीभ मांस व चाम की बनी होती है उसमें हड्डी भी नहीं होती तथापि वह जोड़ने व तोड़ने दोनों ही काम बखूबी करने का सामर्थ्य रखती है। अच्छा बोलकर, क्षमा मांगकर बिगड़े रिश्तों को सुधारा जा सकता है तो खराब व कड़वा बोलकर बने हुए रिश्तों को बिगाड़ा भी जा सकता है। जो काम शब्द से हो सकता है उसके लिए हाथ उठाने की आवश्यकता कदापि नहीं है। हाथ वही उठाते हैं जिनके शब्दों में दम नहीं होता। अच्छा बोलकर आप न करने वाले से भी कोई भी काम करा सकते हैं। हमें समझना होगा कि कोई भी अपना अपमान सहन नहीं करना चाहता। हम अधीनस्थ के साथियों के सम्मान को चोट न पहुँचा कर ही मनचाहा काम करा सकते हैं। अहंकार किसी का नहीं चलता। प्रेम से और मानवता से इस दुनियों को जीता जा सकता है।

प्रवचन के आरंभ में संघस्थ पूज्य मुनिश्री सुश्रुत सागरजी ने बच्चों को संबोधित करते हुए कहा कि जीवन जीने के श्रेष्ठ संस्कार गुरु के पास जाने से ही मिलते हैं। जिस प्रकार पाठशाला जाने से लौकिक शिक्षा प्राप्त होती है, उसी प्रकार जीवन जीने का सार सच्चे गुरु से ही मिल सकता है। बच्चों व श्रावकों को संस्कारित करने के लिए संघस्थ दीदीयों द्वारा सांयकाल स्वाध्याय व प्रश्नमंच के माध्यम से श्रावकोन्मुखी चर्या से परिचित कराने का अति उपयोगी दैनिक कार्यक्रम चलाया जा रहा है जिससे जैन-जैनोत्तर समुदाय लाभान्वित हो रहा है।

## 13

### मिलना किस काम का जब मन न मिले

“मिलना किस काम का, जब मन ना मिले और जीना किस काम का, जब जीवन में धर्म ना मिले” की नीतिमत्ता पूर्ण युक्ति से अपनी बात शुरु करते हुए चर्याचक्रवर्ती परम पूज्य 108 आचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज ने चातुर्मास के आज रविवासरीय प्रवचन में कहा कि यदि लौकिक जीवन में

आपका मन किसी से नहीं मिलता तो जीवन की विविध भूमिकाएं भार रूप लगने लगती हैं भले ही वह विवाहित जिंदगी के मनभेद हों या फिर जॉब आदि की असंतुष्टि। मन मिलने के लिए आपका मन निर्मल होना चाहिए और सामने वाले का भी। दोनों के ही मन में मिलने की बराबर, एक समान प्यास का होना जरूरी है। मन और भावनाओं के मिलने से दूर रहने वाले भी पास लगने लगते हैं इसके विपरीत मनमेल के अभाव में पास वाले भी काफी दूर व अप्रिय ही लगते हैं।

मन मिलन और मन मुटाव दोनों का प्रभाव समान होता है एक जितना सकारात्मक तो दूसरे का उतना ही नकारात्मक और उसकी स्पष्ट प्रतीति व्यक्ति के व्यवहार में झलकती है। इसी प्रकार धर्म व सत्पुरुषों का समागम बहुत ही सौभाग्य से प्राप्त होता है। जिन्हें प्रभु के वचनों में श्रद्धान व विश्वास होता है वे ही सत्-साधना व संयममय मार्ग का अनुसरण करके अपने जीवन को सार्थक बना पाते हैं। वे जीवन को "ऐश" मानकर विलासी नहीं बनाते अपितु अनासक्ति व कठोर साधना के द्वारा वीर प्रभु की तरह "ऐश्वर्यवान" बनाते हैं। जैसे कीचड़ में रहते हुए भी कमल उससे अलग रहता है ठीक उसी तरह गीता में बताए गए स्थितप्रज्ञ मार्ग का अनुसरण करते हुए व्यक्ति अनासक्त रह सकता है और स्वयं के साथ साथ वह दूसरों के लिए भी उपयोगी बन सकता है। यही सम्यक दर्शन है।

प्रायः इस सुलझी हुई सोच के अभाव में हम जाने अनजाने अपने से छोटे व कनिष्क सहकर्मियों व सहायकों का अपमान करते रहते हैं, उन्हें मानवोचित सम्मान देने से कतराते रहते हैं, गुरुर में उनकी परवाह न करने तथा पसंद न करने की गलतियां करते हैं आदि कारण ही मन मुटाव की जड़ हैं। हमारे अनमोल ग्रंथ बताते हैं कि सभी प्राणियों में परमात्मा स्वरूप आत्मा का निवास होता है यदि हम किसी भी जीव की बेदरकारी करते हैं तो वह परोक्ष रूप से परमात्मा का ही अपमान है। हमें समझना होगा कि मनुष्य कभी बुरा नहीं होता परिस्थितियां ही उसे बुरा बनाती हैं। उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के जीवन से जुड़ी साबरमती आश्रम की घटना का जिक्र करते हुए कहा कि—

एक बार आश्रम में चोर घुस आया, लोग उसे पकड़कर मारने लगे, गांधीजी ने लोगों को रोकते हुए कहा कि क्या आप में से किसी ने यह जानने की कोशिश की कि यह चोरी करने क्यों आया? उन्होंने करुणा भाव से पहले उसे खाना खिलाने को कहा फिर उसकी बात सुनी। चोर ने रोते हुए कहा कि मेरे घर में बीमार माँ है, मेरे पास इलाज के पैसे नहीं हैं, मुझे काम भी नहीं मिलता और मैं 12 घंटे काम करूँ या बीमार माँ की सेवा सुश्रुषा? सच में हम किसी दोषी को लेकर गांधीजी की तरह मानवीय दृष्टि से सोचने का प्रयास नहीं करते। हमें किसी की गलतियों को सार्वजनिक

करके उसे अपमानित करने से बचना चाहिए और उसे गलतियां सुधारने का अवसर प्रदान करना चाहिए। ऐसे जीव काम, क्रोध व मद के वशीभूत होकर विचलित हो जाते हैं उन्हें स्थिति प्रज्ञा भाव से सही रास्ते पर लाने के लिए धर्मज्ञजनों को भोजन, धन आदि से विवेकपूर्वक मदद के लिए आगे आना चाहिए ताकि भटके हुए लोगों को सही मार्ग पर लाया जा सके।

निश्चयनय के स्थितिप्रज्ञ के साथ साथ व्यवहारनय के स्थितिप्रज्ञ को समझना तथा उसे जन जन तक पहुँचाना इस प्रक्रिया में मदद रूप होना बहुत जरूरी है। मनमेल बना रहे इसके लिए जरूरी है कि हम किसी को तुच्छ न समझे, बड़ों के प्रति सम्मान और छोटों के प्रति प्यार को बनाए रखें, इनके साथ वह व्यवहार कदापि नहीं करें जो अपने लिए पसंद न करते हों।

आचार्यश्री के प्रवचन से पूर्व गुरुकृपा के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए संघस्थ मुनिश्री श्रुतांश सागरजी महाराज ने रामायण के राम-केवट संवाद के प्रतीकात्मक माध्यम के द्वारा विनयपूर्वक कहा है कि केवट ने नदी पार कराई थी किन्तु आचार्यप्रवर ने तो संसाररूपी सागर को पार कराने के पथ में लगाकर हमारे जीवन पर अत्यन्त उपकार किया है। आज की प्रवचन सभा में कड़ी विधानसभा क्षेत्र के विधायक श्री कै.पी. सोलंकी भी रोज की तरह उपस्थित रहे, उन्होंने आचार्यश्री के आशीर्वाद व प्रवचन लाभ से स्वयं को कृतार्थ किया। दिगंबर जैन समाज, गांधीनगर के पदाधिकारियों द्वारा उनका सम्मान किया गया।

## 14

### अहिंसा श्रेष्ठ धर्म

### इसका पालन ही सच्ची मानवता

इस जगत के समस्त प्राणियों में एक समान जीवात्मा है, सभी समान रूप से सुख-दुख का अनुभव करते हैं और सभी जीव ही जीने की कामना रखते हैं फिर भी हिंसा के आतंक में निर्बल, असहाय और अबोले जीव इसके शिकार होते हैं। संसार का कोई भी धर्म किसी भी रूप में हिंसा का समर्थन नहीं करता। चर्याचक्रवर्ती परम पूज्य 108 आचार्य श्री सुनील सागर जी महाराज ने अहिंसा की वर्तमान प्रासंगिकता पर, मानव समुदाय के लिए इसकी अनिवार्यता पर अपने उद्बोधन में आगे कहा कि इस संसार के समस्त जीव चैतन्य दृष्टि से एक समान हैं। जब सभी को समान रूप से अपने प्राण प्यारे हैं तो किसी रीति-रिवाज, परंपरा अथवा अज्ञान की आड़ में किसी के प्राणों के हनन का अधिकार किसी को कैसे मिलना चाहिए? अबोल व मूक पशुओं की बलि क्रूरतम व अमानवीय कृत्य है फिर भले ही वह किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो?

जग उद्धारक भगवान महावीर स्वामी ने बिना किसी भेदभाव के सृष्टि के समस्त जीवों के प्रति दया, करुणा, प्रेम व जिओ और जीने दो का संदेश दिया था यही धर्म का और जीवन का सार है। आज जीवन जीने के लिए इसी की ही आवश्यकता है। महाकवि तुलसी दास ने सच ही कहा है—

**दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।  
तुलसी दया न छाड़िए, जब लग घट में प्रान।।**

संत कबीर भी अहिंसा के समर्थन में दया व करुणा के प्रसार में कहते हैं कि— हमें कभी भी अपने से निर्बल को नहीं सताना चाहिए।

**निर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।  
मुई खाल की श्वांस से सार भस्म हो जाय।**

जब मरे चमड़े के अंदर की हवा मात्र से लोहे जैसी मजबूत वस्तु को भस्म किया जा सकता है तो क्या निर्बलों की हाय से, मूक पशुओं के करुणामय क्रंदन से तथा उनकी बहुआओं के परिणाम स्वरूप क्या क्या नहीं हो सकता? अहिंसा व प्रेम ही सर्वोत्कृष्ट वस्तु हैं। यह एक ऐसी शक्ति है जो इंसान को इंसान बनाती है। इसकी पालना सभी को अपने जीवन में पूर्ण श्रद्धा व विश्वास के साथ करनी चाहिए।

आज प्रवचन के आरंभ में संघस्थ मुनिश्री सुधीरसागरजी महाराज ने गुरु महिमा के बारे में अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि जिस प्रकार वर्षा ऋतु का जल सभी के लिए गुणकारी है, जीवन के लिए जरूरी है उसी प्रकार सच्चे गुरु की अमृतमयी वाणी भी संसार सागर से पार उतरने में सहायक है। जिस प्रकार रत्नों से भरा हुआ जहाज नाविक रहित होने से किनारे पर लगते लगते भी डूब सकता है इसी प्रकार गुरु सानिध्य व गुरुकृपा के अभाव में हम कभी भी भ्रमित होकर अपनी मंजिल से भटक सकते हैं, भ्रमित हो सकते हैं। गुरुकृपा हम सभी के मन को सदैव प्रफुल्लित रखती है। हम सभी सम्यग्दृष्टि जीव सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की शरण लेते हैं। प्रत्यक्ष रूप से गुरु ही हम पर वह उपकार करते हैं जिससे हम भगवान के स्वरूप को पहचान कर, शास्त्र आगम आदि का बोध प्राप्त कर मोक्षमार्ग पर सफलता से बढ़ पाते हैं। आज के दिन अहिंसा की प्रभावना के लिए आचार्यश्री की प्रेरणा से व उनके पावन सानिध्य में सुबह 10.00 बजे से लेकर कल सुबह ता. 23.8.2018 तक महामंत्र णमोकार का अखंड पाठ श्री सन्मति समोशरण, 1008 श्री महावीर स्वामी दिगंबर जैन, मंदिर, सेक्टर-21, गांधीनगर में रखा गया जिसका लाभ समस्त समाज को प्राप्त हुआ।

## 15

**क्रोध ही सर्वनाश की जड़ : उत्तम क्षमा धर्म**

उत्तम क्षमा धर्म कहता है कि क्रोध को छोड़ने से कई प्रकार के आन्तरिक एवं बाह्य नुकसान से बचा जा सकता है। परमकृपालु वीतरागी भगवान तथा उनकी वाणी— जिनवाणी कहती है कि गुस्से को दूध और पानी की तरह सहजता से पीना सीख जाओगे जो सही मायनों में उत्तम क्षमा धर्म का पालन कर सकोगे। क्रोध ही सर्वनाश की जड़ है। क्रोध के आवेश में जीव चेतनशून्य, संवेदनहीन और अविवेकी हो जाता है तथा अपने भले बुरे का भी विचार नहीं कर पाता। चर्याचक्रवर्ती प्राकृताचार्य 108 आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज ने आज पर्युषण पर्व के प्रथम दिन जीवन में उत्तम क्षमा धर्म का महत्व समझाते हुए कहा कि दशलक्षण धर्म की आराधना कोई भी कर सकता है इसके लिए जैन होना आवश्यक नहीं।

उत्तमक्षमा धर्म क्रोध छोड़ने की बात करता है, उत्तम मार्दव अहंकार को खत्म करने की एवं उत्तम आर्जव धर्म सरल स्वभावी बनने की प्रेरणा देता है तथा उत्तम शौच धर्म परिग्रह को घटाते हुए संतोषी जीवन व्यतीत करने की वकालत करता है। ये चार गुण जिस व्यक्ति में प्रकट हो जाते हैं वह कभी असत्य नहीं बोलता और संयम को धारण करता है, तप और त्याग का पुरुषार्थ करता है तथा परिग्रह में से अपना ममत्व कम करते हुए आर्किंचन धर्म को धारण कर अपना उद्धार कर लेता है। गुरुदेव कहते हैं कि लौकिक जगत में प्रत्येक विषय के अध्ययन एवं परीक्षा की एक नियत समय सारणी रहती है किन्तु दशलक्षण धर्मों का अभ्यास तो जीव को आत्मकल्याण के लिए सावधान रहने के लिए ता—उम्र करना पड़ता है।

यदि हम क्रोध करते हैं तो हम अपने से छोटे हों या बड़े, किसी से भी प्रेम, सम्मान व आत्मीयता प्राप्त नहीं कर सकते। क्रोध के कारण हाथ में आया हुआ अवसर भी खोना पड़ जाता है। हो सकता है कि लोग आपके क्रोध के कारण आपसे डरें भी किन्तु यह भय किस काम का कि आत्मीयता ही इन संबंधों से किनारा कर ले। क्रोध करने वाला पहले अपने तन—मन का नुकसान कर लेता है फिर भले ही सामने वाले का नुकसान हो या न हो। क्रोध से शरीर और आत्मा दोनों का नाश होता है। जब यह जीव भेदविज्ञान करना सीख जाता है तब वह क्रोध नहीं करता है, सभी से क्षमा मांगने का साहस पैदा कर लेता है और उदार मन से सभी को क्षमा कर सकता है। हम सीख ले सकते हैं अपनी संस्कृति के प्रेरक प्रसंगों से। भगवान पार्श्वनाथ पर क्रोधी कमठ का उपसर्ग हार मान गया। एक प्रेरक प्रसंग है जिसमें एक

यक्ष श्रीकृष्ण जी के क्रोध की परीक्षा करने आता है, उस्केरता है किन्तु शांत स्वभावी कृष्ण के सामने हार मानकर घुटने टेक देता है।

**क्षमा मानव का भूषण है, अरु मानवों का श्रंगार।  
क्षमायुक्त मानव इस जग में, सुख पाता है दिव्य अपार।।**

## 16

### **अहंकार छोड़ जीवन में मृदुता धारण करो : उत्तम मार्दव धर्म**

**घमंड न करना जिंदगी में, तकदीर बदलती रहती है  
शीशा वही रहता है, तस्वीर बदलती रहती है।**

एक धर्म के दस लक्षण, धर्म को अपनाने के दस रास्ते, दस तरह से समझो तो सही। किसी भी रस्ते को अपना लो, सभी को पहुँचना तो एक ही जगह है। क्रोध जाता है तो क्षमा आती है, मान जाता है तो मृदुता आती है। मृदुता बहुत बड़ी शक्ति है। कमठ के उपसर्ग पर भी मृदु विनयी रहने वाले प्रमु पार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए कल्याणमंदिर स्तोत्र में आचार्य श्री कुमुदचन्द्रजी कहते हैं कि भगवन् आप पर जो चवंर ढोरे जाते हैं वे यह संदेश देते हैं कि जो जितना झुकता है वह उतना ऊपर उठता है। विनम्र कौन होता है? जो निज स्वभाव में जाता है वही मृदु बन पाता है। अहंकार आपका स्वभाव नहीं है। अहम् आपके साथ नहीं जायेगा और यदि जायेगा भी तो नीचे की ओर ही ले जायेगा जबकि मृदुता, विनय आपको ऊपर की ओर ले जायेगी।

कार का अहम् और अहम् की कार। यह कार बहुदा लोगों में पायी जाती है भले ही नवकार की कार उनके पास न हो। कार का अहम् भी बहुतों को होता है। अहम् की यह बिना पहियों वाली कार दौड़ती तो बहुत तेज है किन्तु अधोपतन नरक के दरवाजे पर ले जाती है। अहंकार की यह कार नवकार की कार से तेज नहीं जा सकती। नमोकार की कार सिद्दालय में बिठा देती है। अहम् मतलब है मैं—पना। पुद्गल वर्गणाओं को ही अपना मान लेना मैं—पना है। हे ज्ञानी! आत्मा तो ज्ञायक स्वरूप है। जैसे गायक बनने में व्यक्ति को पुद्गल का सहयोग लेना पड़ता है और उसका गायकपना पुद्गल की स्थिति पर निर्भर हो जाता है जबकि ज्ञायक बनने में किसी का भी सहयोग नहीं लेना पड़ता।

मैं धनवान हूँ यह कैसा अहम्?। तुम धनवान नहीं हो सकते हो, ज्ञान वान हो सकते हो। अरे ज्ञानी! आप धनवान नहीं हैं, धनवान होना आरोपण है, अहंकार भी आरोपण है, स्वभाव नहीं। ज्ञानी को अहंकार नहीं होता। अहंकार,

मान प्रतिष्ठा की चाह सभी व्यर्थ है। आत्मा ही अनंत गुणों का धन है। ज्ञानी को संसार में रहते हुए कर्म करना पड़ता है लेकिन उसमें वह उलझता नहीं है। जैसे मुनिराज को आहार करना पड़ता है लेकिन वे उसमें स्वाद नहीं लेते उसी प्रकार धर्मात्मा को ग्रहस्थ धर्म के कार्य करने पड़ते हैं लेकिन वे संसार को बढ़ाने वाले सीमा से बाहर के कार्यों में अनवाश्यक रूप से उलझते नहीं हैं और कार्य करते हुए भी कर्तापने के अहम् से सर्वथा दूर रहते हैं।

आचार्य भगवन् कहते हैं कि जिस भव्य जीवों की उपादान योग्यता जागृत हो जाती है वही इस बात को आसानी से समझ पाते हैं, विनम्रता को धारण कर पाते हैं। बन्धुओ! जब आप गुस्सा करते हैं तो एक मिनट में 6 घंटे जितनी काम करने की शक्ति को नष्ट कर लेते हैं, जब अहंकार करते हैं तो शरीर में जहर बनता है। नदी किनारे खड़े रहने वाले पेड़ बाढ़ आने पर बह जाते हैं जबकि झुकने वाली घास बच जाती है। ज्यादा अकड़ने से टूटन होती है इसलिए विनम्र बनें।

**झुकता वही है जिसमें जान होती है,  
अक्कड़पन तो मुर्दे की पहचान होती है।**

जो आदमी खड़ा खड़ा घर से नहीं निकला लोग उसे (मुर्दे की तरह) लिटाकर ले जाते हैं। खड़ा खड़ा निकलता है त्यागी और लेटकर निकलने वाला होता है भोगी जो अंत तक उनसे लिपटा रहता है। यदि हम परिवार के प्रति विनम्र रहते हैं तो परिवार चलता है। इसके विपरीत यदि कोई कर्तापने का अहम् रखकर व्यवहार करता है तो परिवार टूट जाता है। परिवार में एक दूसरे को सम्मान देना विनम्रता है और मान का अहम् नासूर। अहंकार इसका कि मेरी बात ही मानी जानी चाहिए किंतु यह जरूरी तो नहीं तो है कि आपकी हर बात मानी ही जाय। न माने जाने पर शरीर से स्वस्थ होते हुए भी लोग बीमार तक हो जाते हैं। कभी हम दूसरों से तुलना कर स्वयं को कमतर समझने लगते हैं, कभी हम अत्यन्त तनाव में चले जाते हैं, हमारी जरा सी उपेक्षा हो जाती है तो हम बिफर उठते हैं। इस मान कषाय के चलते अपने अपने परिणामों को ऊँचा-नीचा करें इसमें कोई सार नहीं है।

**प्रेम सदा क्षमा मांगता पसंद करता है।  
अहंकार सदा माफी देना पसंद करता है।**

ज्ञानी समझता है न क्षमा मांगने की चीज है न देने की। क्षमा मांगने में कुछ जाता नहीं है। सच्ची क्षमा वही है जिसमें अहंकार टूट जाय। जब आपका जन्म हुआ पहले जीभ आई, दांत बाद में। जबकि कड़क रहने वाले दांत पहले चले गए तथा मृदु रहने वाली जीभ बाद में। आचार्य आदिसागरजी कहते हैं जो गांठ आसानी से खोली जा सकती हो उसे बेबजह उलझाने की जरूरत नहीं। यदि लंबा और अच्छा जीना चाहते हो तो जीभ की तरह मृदु

बनो। मान की बहुलता से मन टूट जाता है, अपे भीतर बैठा हुआ आत्मन भी टूट जाता है। कहा भी है— मान महा विष रूप करहि नीच गति जगत में। बहुत अहंकार करने वाले को कोई पसंद नहीं करता, गुरु भी अहंकारी शिष्य को पसंद नहीं करता। अहंकार से भरे एक शिष्य ने अपने गुरु से कहा कि बताओ गुरुजी मैं आपको गुरुदक्षिणा में क्या दूँ? गुरु ने कहा कि सारे के सारे अच्छे गुण, वस्तुएं तो मेरे पास हैं। इसलिए तुम मुझे गुरुदक्षिणा में ऐसी वस्तु दो जो सबसे निकृष्ट हो और जिसका कोई उपयोग न हो। शिष्य कभी कचरा तो गोबर गुरु के पास लाया। गुरु ने कहा कि इनसे तो बायोगैस बन सकता है यह कहाँ बेकार है? अरे तुम्हारे अंदर जो देने का अहंकार है उसे छोड़ दो उसे मुझे दे दो तो तुम सुखी हो जाओगे।

## 17

### सरल स्वभावी और निष्कपटी होना : उत्तम आर्जव धर्म

धर्म तो एक एक है किन्तु वह उत्तम क्षमा, मार्जव, आर्जव आदि दश लक्षण सहित है। पर्युषण पर्व ही आत्मा के आनंद का, त्याग और संयम का एक ऐसा पर्व है जो हर दिन एक नया लक्षण सिखाता है जो मनुष्य के व्यावहारिक जीवन को शांतिपूर्ण व सुखमय बनाता ही है और इससे कषाय मंद पड़ने के कारण उसका परभव भी सुधर जाता है। 108 आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज ने बड़े ही सहज ढंग से सुन्दर पंक्तियों के माध्यम से कहा कि उत्तम क्षमा धर्म कहता है कि क्रोध को भगाओ, मादर्व कहता मुलायम बनो, आर्जव कहता सरल बनो रे, शौच बताता लोभ धुनो रे, सत्य धर्म कहता हर क्षण इसे धारण करो, संयम धर आनंद बढ़ाओ, तप करके कुंदन बन जाओ, त्यागी बन उपकार करो, आकिंचन्यमय रूप धरो और ब्रह्मचर्यमय आचरण करो।

आज की प्रवचनसभा में पूर्व मेयर श्री गौतमभाई शाह के साथ सांसद एवं सर्जन डॉ. किरीटभाई सोलंकी आचार्यश्री के आशीर्वाद हेतु पधारें और कहा कि गुरुवर का प्रवचन बहुत ही सारयुक्त है उनकी निश्रा में पहुँचे संधारा ले रहे 38वें उपवास पर चल रहे क्षुल्लक सर्वार्थ सागरजी की बीमारी व वर्तमान परिस्थिति का अवलोकन करने के पश्चात् सार्वजनिक रूप से कहा कि चिकित्साशास्त्र में यह किसी चमत्कार से कम नहीं है।

आर्जव धर्म पर अपनी परमकल्याणी वाणी से गुरुदेव ने कहा कि स्वभाव में सरलता रखो, निष्कपट बनो। कपटी और मायाचारी व्यक्ति का तो उसके माता-पिता और गुरुजन भी विश्वास नहीं करते। कपट छिपाने से छिपता नहीं है। अनुभवी, हित रखने वाले गुरुजन ऐसे भटके हुए लोगों को सुधारने की कोशिश करते हैं किन्तु स्वयं को न बदल पाने की जड़

मानसिकता के कारण वे पतन के गहरे गर्त में गिरते, धंसते चले जाते हैं। ऐसा व्यक्ति इस लोक में तो अपना मान-सम्मान, प्रेम, वात्सल्य और विश्वास खोता ही है किन्तु परलोक की भी बेगति कर बैठता है।

कई सारे युवा और बच्चे सुसंस्कारों के अभाव में अक्सर छल-कपट के गलत रास्ते पर चल पड़ते हैं, कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। इन्हें माता-पिता और बड़े जनों की सीख भी नहीं सुहाती। इसका अंत सर्वदा बुरा होता है। वे कई खतरनाक दुर्व्यसनों के जाल में फंस जाते हैं, भोले भाले साथियों को भी षड्यंत्र के शिकजे में कस लेते हैं। आचार्य गुरुवर प्रचलित धर्म व लोकनीति को सामने रखकर स्वयं को सही रास्ते पर बनाए रखने की हिमायत करते हैं—

**“जो तोकूँ काँटा बुए, बाय बोय तू फूल।  
तोको फूल के फूल हैं बाकूँ हैं त्रिशूल।।”**

आर्जव धर्म कहता है कि कपट आदि से सिद्धि प्राप्त करने वालों के, चोरों के कभी नगर नहीं बसते। यदि संयोगवश कुछ भौतिक साधन सम्पत्ति एकत्र भी हो जाय तो भी वह उसका शांति से भोग नहीं कर पाता। बेईमानी की मलाई की अपेक्षा ईमानदारी की सूखी रोटी ही अच्छी है। जीवन को सुखमय बनाने के लिए हमें मात्र इतना ही सोचना है कि हमारी बजह से कोई दुखी नहीं हो। शिक्षाविद् एवं जैनसंत गणेशवर्णी जी के गृहस्थ जीवन का उदाहरण देते हुए गुरुदेव ने कहा कि कोई हमें कोई भले ही ठग ले किन्तु हमसे कोई ठगा नहीं जाय, इसकी सावधानी जरूरी है। गरीब आदमी तो शायद पेट भरने के लिए पाप कर लेता है किन्तु अमीर लोग पेटी भरने के लिए पापचरण करने से नहीं चूकते।

गुरुदेव कहते हैं कि आगम का कथन है कि एक मुनिराज ने मौन रहते हुए उपवासी मुनि के रूप में अपनी झूठी प्रशंसा सुन ली परिणामस्वरूप मरकर वे राम के भाई भरत के हाथी तिलोकमंडन बने और वास्तविक उपवासी मुनि भरत बने। भारतीय लोक व्यवहार में एक बहुत ही प्रचलित कहावत है—

**“दगा किसी का सगा नहीं है, ना मानो तो कर देखो।  
जिस किसीने दगा किया है, जाकर उसके घर देखो।।”**

इस नजीर के द्वारा संबोधित करते हुए कहा कि जो दूसरों के लिए गड़ढ़ा खोदने वाला स्वयं ही उसमें गिरता है पश्चाताप के बाबजूद लोकनिंदा से नहीं बच पाता।

## 18

**लोभ पाप का बाप क्यों? : उत्तम शौच धर्म**

कहते हैं कि कफन के जेब नहीं होती, जन्म के समय पहनाए गए प्रथम वस्त्र झगुले में भी जेब नहीं थी फिर भी इस लोभी असंतोषी मानव ने अपनी सारी उमर सही-गलत तरीके से धन एकत्र करने की हाय-हाय में बिता दी। न तो अपनी आत्मा की शांति का विचार किया और न ही संबंधों का लिहाज। आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज ने कहा कि उत्तम शौचधर्म इसी तत्व के चिन्तन-मनन का विषय है और मन को आसक्ति से विरक्त करने वाला धर्म का एक लक्षण है जिसे आत्म कल्याण हेतु हर श्रावक को अपने जीवन में धारण करना चाहिए।

यहाँ 60-70 युवा निर्जल उपवास करके दशधर्म की साधना कर रहे हैं वे अन्य के लिए प्रेरणारूप हैं। आचार्यश्री ने एक प्रचलित लोक दृष्टान्त के माध्यम से समझाया कि लोभ पाप का बाप क्यों है? इसकी परिणति कैसे होती है? इसे इस दृष्टान्त से समझ सकते हैं—

विद्या अध्ययन कर वापस लौटे पंडितजी ने जब अपनी पत्नी के इस प्रश्न का जबाब खोजने हेतु बनारस के लिए पुनः प्रस्थान किया। रास्ते में अनजाने में एक वेश्या के चबूतरे पर बैठ जाते हैं। ज्ञात होने पर वहाँ से निकल जाने का जतन करते हैं, वेश्या के अनुनय विनय करने पर धर्म भ्रष्ट होने की दुहाई देते हैं लेकिन अंत में उस वेश्या के 100 सोने की मुहरों के लालच में वहीं पर सोने के लिए राजी हो जाते हैं, उसके आगे 500 मुहरों के लालच मिलने पर सुबह उसके घर के अंदर भोजन के लिए भी राजी हो जाते हैं और अंत में अपने ईमान से नीचे गिरते हुए 1000 सुवर्ण मुद्राओं के लालच में जैसे ही उसके हाथ से एक निवाला खाने के लिए मुँह खोलते हैं तब उस वेश्या का एक झन्नाटेदार तमाचा उनके गाल पर पड़ता है तब उन्हें अपनी पतोन्मुख लज्जापूर्ण अवस्था का भान होता है। आचार्य भगवन् कहते हैं कि तन की शुचिता नहीं किन्तु मन और आत्मा के भावों की शुचिता जरूरी है जो कषायादिक विकारों के कारण दूषित होती रहती है।

आज की प्रवचन सभा में गुजराती फिल्म जगत के जानेमाने अभिनेता नरेश कनोड़िया, उनके अभिनेता पुत्र तथा ईडर क्षेत्र के विधायक श्री हितुभाई कनोड़िया, पूर्व मेयर श्री गौतमभाई शाह के साथ आचार्यश्री के दर्शन एवं आशीर्वाद हेतु उपस्थित हुए। आचार्यश्री की साधना और तपस्चर्या से प्रभावित होकर नरेशभाई कनोड़िया ने कहा कि हम 75 वर्ष की आयु में प्रथम बार आपके दर्शन करके अपने जीवन में कृतार्थता व धन्यता का अनुभव

कर पा रहे हैं। दिगंबर संत वे हैं जिनका न कोई ड्रेस है और और न ही कोई एड्रेस फिर भी समाज कल्याण हेतु अपार अनुकंपा है उनके चरित्र में।

युवा विधायक श्री हितुभाई ने कहा कि दिगंबर मुनि की तपस्चर्या अत्यन्त कठिन है वे अपना सर्वस्व छोड़कर आत्म साधना के पथ पर चल रहे हैं तथा अपनी अमृतमयी वाणी से हम सभी को सद्मार्ग पर ले जा रहे हैं। ऐसे कृपालु आचार्य भगवन् एवं समस्त मुनिसंघ को कोटि कोटि वंदन नमन।

गुरुदेव ने सभी महानुभावों को उनकी विनम्रता व भक्तिभाव की प्रशंसा करते हुए आशीर्वाद प्रदान किया और कहा कि ये जानी-मानी शिष्यायत होने के बाद भी स्वयं को तुच्छ कहने का साहस करते हैं सच में ऐसे ही लोग सफलता के शिखर को छूते हैं। इस सार्वजनिक मंच से प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी को उनके जन्म दिवस पर आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा कि वे शाकाहार व संस्कृति के संरक्षक हैं जो सतत लंबे विदेश प्रवास के दरम्यान भी अपने इस संकल्प पर दृढ़ रहे हैं जो कि एक सराहनीय तथा सभी के लिए प्रेरणास्पद कदम है।

लोभ एवं तृष्णा अंतहीन है, सभी पाप का मूल है इसलिए देह के साज श्रंगार में अपने समय साधनों को लगाने के बजाए आत्मशुद्धि के साधना में लगाए, देह के प्रति आसक्ति घटाएं, संतोष धारण करें एवं आजीविकोपार्जन में लोभ को परे रखकर उचित अनुचित के भेद विज्ञान को जीवन में विकसित करें। जिस तरह शरीर के हितार्थ पहले बल्डग्रुप को चेक करते हैं, उसी प्रकार कमाई का उपयोग करने से पहले उसके स्रोत व कमाने के तरीके को चेक अवश्य करें। अनीति से कितना ही क्यों न कमा लिया जाय किन्तु उसके जरिए सुख शांति हांसिल नहीं की जा सकती। गलत कमाई से परिवार नष्ट हो जाता है तथा अंत में संतोष और धन दोनों ही पलायन कर जाते हैं, पल्ले में पश्चाताप के अलावा कुछ भी नहीं रहता।

## 19

### सत्यवादी नहीं किन्तु सत्य जीवन जीने वाले बनो : उत्तम सत्य धर्म

हमेशा सत्य की ही जीत होती है। 'सत्यमेव जयते' एक शाश्वत सूत्र है। सत्यवादी को भले ही दुनियाँ में मुश्किलों का सामना करना पड़ता हो किन्तु जीत और सम्मान उसके ही हिस्से में आता है। सत्य धर्म की महानता एवं जीवन में इसकी अनिवार्यता पर प्रकाश डालते हुए आज की प्रातःकालीन प्रवचन सभा में चर्याचक्रवर्ती आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज ने कहा कि सतवादी प्रत्यक्ष में भले हारा हुआ दिखता हो, मुश्किलों से घिरा हुआ दिखता

हो किन्तु वह कभी हारता नहीं है, अपितु हमेशा दूसरों के लिए सत्य का मार्ग प्रशस्त करता है। इसलिए कहा गया है कि—

**सच्चाई छिप नहीं सकती कभी झूठे उसूलों से।  
खुशबू आ नहीं सकती कभी कागज के फूलों से।'**

सत्य एक खरा सोना है जो हर परिस्थिति में सोना ही रहता है। भारतीय संस्कृति का एक सोनेरी सूत्र है— 'साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप।' सत्य बोलने वाले के हृदय में सदा प्रभु निवास करते हैं। उसे किसी का भय नहीं होता। 'साँच को कभी आँच नहीं आती।' सत्य बोलने वाले का कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। व्रत उपवास आदि तो बाह्य तप हैं किन्तु सत्य वह अंतरंग तप है जो सीधा मोक्ष मार्ग पर ले जाता है। सत्य ही सम्यक् श्रद्धान है।

गांधीजी ने सत्य को अपने जीवन में उतारा। बचपन में देखे गए सत्यवादी हरिश्चन्द्र नाटक का गहरा असर उनके मन पर इस कदर पड़ा कि वे ता-उम्र सत्य के प्रयोग करते रहे और सत्य के प्रति अपनी श्रद्धा तथा निष्ठा को निरंतर दृढ़तर बनाते गए। उनका मत था कि यदि दुनियाँ का हर व्यक्ति सच बोलने लगे तो इस जीवन की, इस दुनियाँ की सारी समस्याओं का समाधान पलभर में हो जायेगा। सत्य की आराधना के लिए जीवन में अहिंसा पालन अनिवार्य है।

सत्य धर्म के व्यावहारिक पक्ष को समझाते हुए आचार्यश्री ने कहा कि सत्य बोलते समय यथोचित विवेक और संयम जरूरी है। हम ऐसा सत्य कदापि न बोले जिससे परिवार में क्लेश पैदा होता हो, समाज में टूटन आती हो, राष्ट्रीय संकट खड़ा होता हो। विपरीत स्थिति में चाहिए कि हम जहाँ तक बने मौन रहें और यदि बोलना भी पड़े इस तरह से कुशलता से, विनम्रता से कहें कि संकट टल जाय या परिस्थितियों का विपरीत प्रवाह थम जाय।

आचार्यश्री आगे कहते हैं कि असत्य बोलने से विश्वास टूटता है। परिवार, समाज और व्यापार आदि में अविश्वास के चलते एक ही झटके में सब कुछ बिखर जाता है। समाज में, युवाओं में विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। अविश्वासी व्यक्ति सच्चाई सामने आने पर निंदा का पात्र बनता है तथा वह अपना धन सम्मान सभी कुछ गुमा बैठता है। इसीलिए हमें जीवन को पारदर्शी और सत्यनिष्ठ बनाना चाहिए।

आज डॉक्टर जैसे सम्मानित पेशे से जुड़े लोग भी इस नश्वर धन के लालच में झूठ बोलकर लोगों को लूटने में तनिक भी नहीं लजाते। मोबाइल जैसे आधुनिक यंत्रों ने तो मानव को बड़ी ही कुशलता से झूठ बोलना सिखा दिया है। यदि समय रहते इस और ध्यान नहीं दिया गया, इससे नहीं बचा गया तो व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को गंभीर परिणाम झेलने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

परम उपकारी आचार्य भगवन् चेतावनी एवं सीख देते हुए कहते हैं कि सत्य के द्वारा कमाई गई लक्ष्मी ही तुम्हारे पास टिक सकती है अनीति व अन्याय तथा दिन—रात झूठ बोलकर अर्जित की गई पूँजी कब हाथों से निकल जायेगी, पता भी नहीं चलेगा। आज सामाजिक—आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का एक मूल कारण लोगों में, युवाओं में सत्यनिष्ठा के अभाव का होना है।

सत्य धर्म का व्यावहारिक पक्ष समझाते हुए कृपालु आचार्यश्री कहते हैं कि जीवन में असत्य तो बोलना ही नहीं चाहिए किन्तु ऐसा सत्य बोलने से बचना चाहिए जिससे किसी व्यक्ति को कष्ट पहुँचता हो, उसके प्राण संकट में पड़ते हो, परिवार व समाज में टूटन आती हो, राष्ट्र की अस्मिता संकट में पड़ती हो। जैन कथानक में एक शिक्षाप्रद दृष्टांत आता है कि—

एक मुनिराज कसाई के पूँछने पर मना कर देते हैं कि गाय इस तरफ से नहीं गई है ताकि उसे कसाई के हाथों मरने से बचाया जा सके। इसी प्रकार एक बार की बात कि बादशाह अकबर ने अपनी मुठ्ठी में चिड़िया को पकड़ लिया और एक श्रावक श्रेष्ठी से पूँछा कि यह जिंदा है या मरी हुई। श्रेष्ठी जान लेता है कि यह चिड़िया जिंदा है किन्तु यदि मैं सत्य कह देता हूँ तो बादशाह अपनी बात सिद्ध करने के लिए इस चिड़िया को मुठ्ठी में दबाकर मार देगा। इसलिए वह कहता है कि यह मरी हुई है और तब बादशाह अपने को सही साबित करने के लिए उस चिड़िया को अपनी मुठ्ठी से आजाद कर देता है और ऐसे असत्य से एक चिड़िया को जीवनदान मिल जाता है।

ऐसे ही कई सारे अवसर जीवन में आते हैं जहाँ हमें अपने विवेक का उपयोग करते हुए सत्य वचन की जगह अन्य के प्राणों को बचाना होता है। सत्य धर्म के पालन की सीख लेने वालों के लिए धर्मराज युधिष्ठिर का एक प्रसंग भी प्रेरणास्पद है— जब वे गुरु द्रोणाचार्य द्वारा सिखाए गए— ‘सत्यं वद’ के पाठ को तीन दिन बाद भी याद करके नहीं सुना सके जबकि सभी राजकुमारों ने कभी का सुना दिया था। गुरुदेव के तमाचा मारने पर और यह पूँछने पर कि पाठ अभी तक याद क्यों नहीं हुआ?, धर्मराज युधिष्ठिर ने बहुत ही मार्मिक उत्तर दिया कि गुरुदेव! पाठ के शब्द तो मुझे पहली बार में ही याद हो गए थे किन्तु मैं उसे अभी तक आचरण में उतार नहीं पाया था इसलिए मना करता रहा। हे भव्य जीवो! सत्य को आचरण में उतारने की क्रिया अनमोल तप है।

आज की प्रवचन सभा में गुजरात विधान सभा के उपदण्डक श्री आनंदभाई चौधरी तथा केशोद के विधायक श्री देवाभाई आचार्यश्री का आशीर्वाद लेने प्रवचन सभा में उपस्थित हुए। धर्मवृद्धि का आशीष देते हुए गुरुदेव ने कहा कि जीवन में हमेशा सत्य बोलो किन्तु दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाला सत्य कभी मत बोलो। इस सत्य का आधार पारस्परिक विश्वास है जिससे जीवन की सभी व्यवस्थाएँ संचालित होती हैं।

## 20

## सद्गृहस्थ भी छोटे छोटे संकल्पों के पालन से कर सकते हैं 'उत्तम संयम धर्म' की साधना

**उत्तम संयम धर्म की साधना के दिन गुजरात विधान सभा के सदस्यों ने लिया आचार्य सुनील सागरजी से मंगल आशीर्वाद**

गांधीनगर, सेक्टर 21, दिगंबर जैन मंदिर में आचार्यश्री सुनील सागरजी विराजमान हैं। चातुर्मास में मंगलमयी वाणी से जन जन के लिए अमृत वर्षा कर रहे हैं। पर्युषण के दौरान हर रोज दश धर्मों का एक एक लक्षण आध्यात्मिक विकास एवं सामाजिक सरोकारों को उन्नत बनाने हेतु समझाते समाज को साधना के उन्नत शिखर पर ले जा रहे हैं। ऐसे परम उपकारी गुरुदेव से जैन ही नहीं जैनोत्तर समाज एवं उनके अग्रणी प्रभावित और लाभान्वित हो रहे हैं। हर रोज कोई न कोई नामचीन व्यक्ति गुरुदेव के आशीष व दर्शन हेतु पधारते हैं। आज गुरुदेव ने संघ सहित विधायक निवास प्रांगण सेक्टर-21 में स्वाध्याय भी किया। आज गुरुदेव का आशीर्वाद लेने के लिए गुजरात विधानसभा सदस्य श्री गोविंदभाई, विरोध पक्ष के नेता परेश धानाणी, संगीता पाटील सूरत, सीमाबेन मोही वडोदरा, डॉ. आशाबेन पटेल उंझा, योगेशपटेल वडोदरा, गेगीबेन ठाकोर वाव, देवाभाई मालम केशोद, आनंदभाई चौधरी उपदण्डक, प्रद्युम्नसिंह जाडेजा अबडासा, मोहनसिंह राठवा छोटा उदेपुर, विरेन्द्रसिंह जाडेजा मांडवी, हिम्मतसिंह पटेल बापूनगर, भीखाभाई जोषी जूनागढ़, बाबूभाई वाजा मांगरोळ, हर्षदभाई राबडिया प्रदेश अध्यक्ष किसान मोर्चा तथा विधानसभा सदस्य विसावदर, पुनाभाई गामित सोनगढ़ व्यारा, मालतीबेन महेश्वरी गांधीधाम, दिनेशभाई वसावा डेडियापाडा, ललितभाई वसोया धोराजी, जवाहरभाई जूनागढ़ तथा महेशभाई छोटूभाई वसावा भरुच आदि सभी ने गुरुदेव आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज का मंगल आशीर्वाद प्राप्त किया और धर्म भावना से प्रेरित होकर अपने कार्यक्षेत्र में संयम व विवेक अपनाने का संकल्प व्यक्त किया।

ऐसा नहीं है कि केवल मुनिराज ही संयम धारण कर सकते हैं अपितु सद्गृहस्थ भी छोटे छोटे संकल्पों का पालन करके उत्तम संयम धर्म की साधना कर सकते हैं। श्रावकों को भी इन्द्रियों के विषयों के प्रति आसक्ति को निरंतर कम करना होगा, उस पर अंकुश लाना होगा यदि अज्ञान व प्रमादवश गलत दिशा में कदम बढ़ गए हैं तो उन्हें वहीं पर रोकना होगा अन्यथा आगे बढ़ते जाने की स्थिति में अथवा अभी विचार न करने की स्थिति उतना ही वापस लौटकर आना होगा, हमारा संसार उतना ही अधिक बढ़ जायेगा। मिथ्या आचरण पर ब्रेक लगाने का नाम ही संयम है।

हे भव्य जीवो! यह मनुष्य जन्म व्यसन करने, भोगविलास में लिप्त रहने, शरीर के श्रंगार हेतु फेशन करने के लिए नहीं मिला अपितु इन पशुवत वृत्तियों को नियंत्रित संयममय मार्ग का अनुशरण करने के लिए मिला है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का चरित्र ले या नारायण श्री कृष्ण का चरित्र ले उनका व्यवहार पूर्णतः आदर्श एवं मर्यादानुचित था। भगवान नेमिनाथजी की विषयभोगों के प्रति हुई अनासक्ति का कारण जीवदया का भाव था जिसने उनके कदमों का रुख संसार सागर के चक्कर से दूर गिरनार के साधना पथ की ओर कर दिया। उनका प्राणी प्रेम व सभी जीवों के प्रति करुणा, संवेदनशीलता का भाव बेमिशाल है। महावीर प्रभु ने भी संयम धर्म की कठोरतम साधना करके आत्मकल्याण के मार्ग को निष्कण्टक बना लिया और वही अहिंसक रास्ता सारी दुनियाँ को बताया जो व्यसन व कुविकार के घोर अंधेरे में डूबी हुई थी।

सही मायनों में संयम ही वह अहिंसक अस्त्र है जिससे कर्मों का नाश होता है, सहनशीलता विकसित होती है और जिससे आत्मा सोने के तरह तपकर शुद्ध सोना बनता है। आचार्य भगवन् कहते हैं कि जीवन में मन, वचन और काय तीनों का संयम अपरिहार्य है। शारीरिक शक्ति होने के बावजूद यदि सहनशीलता आ सके तो वह संयम है। इस संयम से आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग तो प्रशस्त होता ही है किन्तु ढेर सारी सामाजिक—मानवीय एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का कारगर निदान भी मिल जाता है। मन का संयम क्रोधादि कषायों पर ब्रेक लगाता है जो कई समस्याओं, परेशानियों का कारण हैं।

महाभारत के युद्ध के पश्चात् पांडवों का श्रीकृष्ण के साथ हुए बहुचर्चित संवाद में संयम व सत्पथ की महिमा सामने आती है जब वे कृष्ण को साथ लेकर तीर्थ नदियों में स्नान से पाप शुद्धि की बात करते हैं। कृष्ण बहुत ही सुन्दर उत्तर देते हैं कि हे पांडु पुत्रो! आत्मा परम पवित्र है, आत्मा एक सुन्दर नदी है जिसमें संयम रूपी जल बहता है, सत्य एवं शील इसके दो किनारे हैं, दया इसकी उर्मियाँ हैं यदि तुम ऐसी नदी में स्नान करते हो तभी सच्चा पश्चाताप कर आत्म शुद्धि करके पापमुक्त हो सकोगे। गुरुदेव ने कहा कि स्नानादि से तो शरीर शुद्धि ही हो सकती है किन्तु आत्मा की शुद्धि के लिए संयमरूपी रत्न धारण करते हुए कठोर साधना करनी होगी, प्रेम करुणा और दया जैसे मानवीय मूल्यों को हृदय में धारण करना होगा।

गांधीजी संयममय जीवन जीने वाले व्यक्ति थे जिनके तीन बंदर—बुरा मत कहो बुरा मत देखो और बुरा मत सुनो बहुत ही प्रसिद्ध थे समाज को सही रास्ते पर लाने के लिए। यदि हम उसमें प्रभु महावीर के बताए रास्ते के अनुरूप एक बंदर और जोड़ दें कि बुरा मत सोचो जो अपने हृदय पर हाथ रखे हुए हो तो ऊपर की तीनों व्यवस्थाएं पूरक बन जायेंगी क्योंकि

जब हम बुरा सोचोगे ही नहीं तो सुनना, कहना, और देखना भी समाप्त हो जायेगा। यही सच्चे संयम की स्थिति होगी। द्रोपदी का उपहासपूर्ण वचन और असंयममय व्यवहार ही महाभारत का कारण बना था यह हम सभी को भलीभाँति ज्ञात है। ऐसा ही अप्रिय प्रसंग रामायण में बना था कि रावण की बहन चन्द्रनखा (सूपर्णखा) विषयासक्ति के चलते अपने पुत्र की उम्र के लक्ष्मण पर मोहित हो गई और विवाह का प्रस्ताव तक कर बैठी। उसके आगे की दशा और समूचे परिणाम से हम सब वाकिफ ही हैं।

वीतराग शासन में मानने वाले संयम के द्वारा षट्काय के जीवों की रक्षा करते हैं और जलकाय, पृथ्वीकाय आदि स्थावर जीवों के साथ त्रस जीवों की रक्षा करते हुए समूचे पर्यावरण की रक्षा में अपना योगदान सुनिश्चित करते हैं। जबकि असंयमी लालच के चलते जल, मिट्टी और वायु के आवरण को विविध तरीके से जहर घोलकर प्रदूषित कर रहा है, हिंसादि प्रवृत्तियों के द्वारा जैव विविधता का नाश कर रहा है। हम सभी संयम धर्म के दिन छोटे-छोटे संकल्प लेकर स्वयं की दशा को उन्नत बना सकते हैं तथा स्वच्छ समाज का निर्माण करते हुए समाज के विकास में अपना योगदान दे सकते हैं।

## 21

### कामना और इन्द्रियों का दमन है : उत्तम तप धर्म

मादों महीने की चिलचिलाती धूप में भी मुनि त्यागीव्रती एवं श्रावकों की कठोर तपस्चर्या पर्युषण के 7वें दिवस साधना शिखर के परवान चढ़ती जा रही है। गुरुदेव आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज ने तपस्वी साधकों की अनुमोदना करते हुए कहा आप लोग आत्मा के गुणों को प्रकट करने हेतु पुरुषार्थ कर रहे हैं। यही वह सच्चा पथ है जो मोक्ष की मंजिल तक ले जाता है। भोग-उपभोग करते रहने से कामनाओं की तृप्ति कभी नहीं हो सकती। कामनाएं व इच्छाएं तो पागल कुत्ते व घड़ी के पेंडुलम की तरह चंचल हैं जो तृप्त करते जाने से और भड़कती हैं।

आचार्य भगवन् ने बादशाह और बकरी के लोकचर्चित कथानक के माध्यम से समझाया कि कितना ही चारा एवं विविध प्रकार के पदार्थ खिलाने के बाद भी बकरी तृप्त नहीं होती अपितु पुनः पुनः खाने के लिए लालायित रहती है। इसी प्रकार हमारी इच्छाएं और कामनाएं भी तृप्त करते जाने पर भी और अधिक बढ़ती ही जाती हैं। वहीं बादशाह के चेलेंज को स्वीकार कर एक श्रेष्ठी श्रावक संयम रूपी डंडा उसके सामने रखकर सभी पदार्थ सामने होते हुए भी उसका मुँह खाने से मोड़ देने में विरक्ति पैदा करने में सफल हो जाता है। भारतीय संस्कृति में कहा गया है— “चाह गई चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह। जाको कछु नहीं चाहिए वे शाह न के शाह।”

इसलिए चाहना, कामना व आसक्ति का सर्वथा त्याग कर दो। परमपूज्य तपस्वी सम्राट आचार्यश्री सन्मति सागरजी महाराज की कठोर साधना एवं तपस्चर्या को श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए आचार्य गुरुदेव श्री सुनील सागरजी महाराज ने कहा कि जब जब इतिहास में “तप” की चर्चा होगी तब आचार्य गुरुवर का नाम अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिया जायेगा। उन्होंने 72 वर्ष की आयु में 30 वर्ष जितना समय तो निर्जल उपवास की तप साधना में बिताया और जीवन के अंतिम 10 वर्षों में यह साधना इतनी कठिनतम होती गई कि 7 दिन बाद 1 दिन में 1 बार ही छछ पानी मात्र का ही आहार। धन्य हैं ऐसे तपस्वी, उनकी उत्कृष्ट तपस्चर्या जिनका तन कुंदन की भांति दमकता था, मन करुणा दया से भरा हुआ था। वचन सिद्धि के धनी गुरुवर ने इस सिद्धि का उपयोग कभी भी अपने लिए नहीं किया अपितु दयाभाव के साथ प्राणिमात्र के कल्याण के लिए अपना वात्सल्य लुटाते रहे।

तीर्थंकर प्रभु ऋषभनाथ, महावीर स्वामी जी आदि की कठोर व उन्नत साधना, श्रीराम की विशुद्ध वनवास साधना भारतीय इतिहास के उज्ज्वल पन्ने हैं। हमारे ऋषि मुनि तो तपस्चर्या के पर्याय ही हैं। हमारी संस्कृति सुभाषतानि आदि में विद्या, शील विनय आदि को तप के रूप में महिमा मंडित करती है और यहाँ तक कहती है कि जो इन गुणों से स्वयं को सुशोभित नहीं कर पाता वह नर नहीं अपितु पशु समान है तथा इस धरा पर भाररूप है। पौराणिक कथानक के अनुसार देवराज इन्द्र भी तपस्वी महर्षि दधीचि के ऋणी माने जाते हैं जिन्होंने याचक के रूप में उनकी हड्डियों मांग कर उससे अस्त्र (बज्र) बनाकर देवासुर संग्राम में विजय प्राप्त की थी।

गुरुदेव ने तप के बाह्य एवं अंतरंग का भेदविज्ञान करते हुए कहा कि अनशन, अवमौदर्य, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विवक्त शय्यासन, काय क्लेश ये बाह्य तप हैं तथा प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्ति स्वाध्याय, व्युत्सर्ग एवं ध्यान अंतरंग तप हैं। स्वाध्याय को परम तप कहा गया है। इन तपों को जीवन में धारण करके नरभव को सफल बनाया जा सकता है। अपनी आत्मा को तपाने के लिए भोजनादि विषयों का त्याग तो जरूरी है ही किन्तु दूसरों के लिए भोजनादि धन आदि पदार्थों का जरूरतमंदों के लिए करुणा के साथ त्याग सामाजिक कल्याण तथा मानवीय मूल्यों की आधारशिला रखता है, परस्पर प्रेम को बढ़ाता है।

तप करते हुए, देश सेवा करते हुए यदि प्राणों का उत्सर्ग भी हो जाय तो परवाह नहीं करनी चाहिए, इस मनुष्य जन्म और उसमें मिली प्राप्तियों का यथायोग्य सदुपयोग करना चाहिए। देवता भी उत्तम तप के लिए तरसते हैं क्योंकि तप मनुष्य जन्म में ही संभव है जो हमें मिला है इसलिए यथाशक्ति तप करो।

संघस्थ आर्यिका श्री सुस्वरमती माताजी ने अपनी ओजपूर्ण वाणी में कहा कि तप इस तरह से करो कि उससे मजबूरी का प्रकटीकरण नहीं अपितु आपकी सामर्थ्य का यथाशक्ति प्रकटीकरण हो। उन्होंने कुत्ते की दुम को सीधा करने के दृष्टांत के माध्यम से समझाया कि एक श्रेष्ठी श्रावक इस चेलेंज को स्वीकार कर जैन दर्शन की पद्धति को अपनाकर कुत्ते को निराहार रखकर सर्व प्रथम उस शक्ति के स्रोत पर रोक लगाता है जिससे उस टेड़ी दुम को पोषण मिलता है और फिर उस कुत्ते की दुम को सीधा करने में सफल हो जाता है। ठीक उसी प्रकार ज्ञानी तपस्वी साधक निराहारी रहकर, संयम को अपनाकर विकारों का शमन करने हेतु संवर करता है, कर्मों की निर्जरा करता है और मोक्षमहल में अपने कदम रखने में सफलता हासिल करता है। पर्युषण श्रावकों को यह सुन्दर अवसर उपलब्ध कराता है। आचार्यश्री कहते हैं कि तप की ताकत अद्भुत है तपस्वी, माता पिता और वात्सल्यमयी गुरुजनों का आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं जाता। इसलिए हे भव्य जीवो! सच्चे मन से तप धर्म की आराधना करो, जरूरतमंदों की मदद करके जीभ पर संयम की मिठास पैदा करो तो शरीर में शुगर नहीं होगी।

## 22

### आत्म कल्याण एवं समाज संतुलन का अद्भुत संगम : उत्तम त्याग धर्म

बेकार का पदार्थ व व्यर्थ प्रवृत्तियों का त्याग तथा श्रेष्ठ वस्तुओं का दान ही उत्तम त्याग है। इसमें आत्म कल्याण के साथ सामाजिक सरोकार व सामाजिक संतुलन का भाव गर्भित है। इसमें उत्तम त्याग धर्म की सच्ची सार्थकता है। संग्रह करने वाला भले ही दुनियाँ की नजरों में श्रेष्ठी हो किन्तु परमात्मा प्रभु की दृष्टि में तो त्यागी ही सर्वश्रेष्ठ होता है जिसके पास ज्ञान का प्रत्याख्यान है अर्थात् वह जानता है कि कौनसी वस्तु त्यागने योग्य है और वह एक पल का भी बिलंब किए बिना उसका त्वरित त्याग कर देता है। तीर्थंकर आदि तपस्वी आत्माओं ने अपने धन वैभव का, छःखण्ड के राज का त्याग एक क्षण में ही कर दिया था। आचार्य भगवन्श्री सुनीलसागरजी महाराज कहते हैं कि त्यागी वह है जो सर्वोत्तम को धारण करता है, सम्यक्त्व का विवेक रखता है और व्यर्थ को भलीभांति जान-समझ कर उसे छोड़ते हुए उत्तम त्याग धर्म को धारण करता है। आचार्य गुरुदेव कहते हैं कि मजबूरी और दिखावे के लिए न तो त्याग करना चाहिए और न ही दान। दान रोते रोते कभी नहीं करना चाहिए। दान के स्वरूप के संबंध में बहुत ही सत्य लोकोक्ति है कि—

बिन मांगे दे वह दूध बराबर, मांगे से दे वह पानी।  
वह देना है खून बराबर, जिसमें खींचातानी।।

श्रेष्ठदान में हर्ष व विरक्ति का भाव होता है। आचार्य भगवन् तपस्वी सम्राट सन्मत्तिसागरजी महाराज उत्तम त्याग की अद्भुत मिशाल रहे हैं। उन्होंने दीक्षा के पश्चात् ऐसे सभी पदार्थों का त्याग कर दिया था जिनके बिना लोग जीवन की कल्पना नहीं कर पाते और अन्त समय में तो उन्होंने अन्न तक छोड़ दिया था। धन्य हैं ऐसे कठोर तपस्वी और उनकी त्याग साधना। कोटि कोटि नमन कि ऐसा संयम हम में भी प्रकट होवे।

त्याग और दान दोनों अलग अलग हैं, एक में छोड़ने की क्रिया है तो दूसरे में देने की। त्याग में व्यर्थ वस्तुओं को छोड़ा जाता है जबकि दान में श्रेष्ठ वस्तुओं का दान किया जाता है। श्रेष्ठी विवेकी लोग आधी रोटी खाकर भी बाकी आधी जरूरतमंद तक पहुँचाते हैं दया व करुणा की भावना के साथ। दान में लेने वाला और देने वाला दो पक्ष होते हैं जबकि त्याग में वह स्वयं अकेला ही होता है। दान करते करते भाव विशुद्धि से दानी त्यागी बन जाता है और त्यागी भी लोककल्याण हेतु उपदेश का दान देता है। इस दृष्टि से देखें तो दोनों एक ही हैं। कषायादि राग-द्वेषजनित विषयवृत्तियों का त्याग ही उत्तम त्याग धर्म है। त्याग धर्म की उपयोगिता संन्यास का मार्ग है।

ज्ञान का प्रत्याख्यान करने वाले महाज्ञानी पुरुष व्यर्थ के पदार्थों से विरक्त होते हैं और उन्हें एक पल गवांए बिना त्याग कर आत्म कल्याण की राह पकड़ लेते हैं और सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं। दान में प्रेम, दया एवं निराभिमान अनिवार्य है। त्याग व्रत आदि नाम, यश, ख्याति की अपेक्षा से कदापि नहीं करने चाहिए क्योंकि ये आत्म विशुद्धि के साधन हैं। कई बार हमारी सामाजिक व्यवस्थाएं, प्रथाएं ऐसी होती हैं जो उपवास आदि के धार्मिक-समाजिक समारोह में असमानता और हीन भावना का अहसास करा जाती हैं। इसलिए जहाँ तक हो धार्मिक व आध्यात्मिक उन्नति के व्यवहारों में लेन-देन से बचना चाहिए ताकि ये विकृतियां पारिवारिक-सामाजिक क्लेश उत्पन्न करने का कारण न बने और ऐसे श्रेष्ठी श्रावक मान-प्रतिष्ठा खोने के भय से त्याग आदि तप करना ही छोड़ दे।

इसी प्रकार दानादि का भी सामाजिक सरोकार देखना चाहिए कि उससे जरूरतमंद का वास्तव में भला होता है कि नहीं, सामाजिक असंतुलन घटता है या नहीं। दान इस तरह से किया जाना चाहिए कि छोटा से छोटा व्यक्ति भी इस व्यवस्था में हर्ष व सम्मान के साथ अपना योगदान सुनिश्चित कर सके। लोग जीवन में पैसे को हद से ज्यादा महत्व दे देते हैं जबकि उत्तम त्याग धर्म कहता है कि मैं धन बुरा हूँ, भला कहिये लीन पर उपकार सों।

एक बार एक चेला गुरु को कहने लगा कि पैसे के बिना कुछ भी संभव नहीं है। देखो! आज यदि मेरे पास उस नाविक को देने के लिए 10

रुपये न होते तो हम दोनों में से कोई भी नदी पार नहीं कर सकता था। गुरु ने समझाया कि यह तुम्हारी भूल है। वस्तुतः तुमने जब 10 रुपये का त्याग किया तभी नदी पार कर सके। यदि तुम समय रहते सभी अतिरेक का त्याग कर दोगे तो इस भव सागर को आसानी से तर जाओगे।

दान से प्रेम बढ़े, अहम् घटे, दूसरों की भी इज्जत ढंकी रहे, इंसानियत जिन्दा रहे, त्याग तप की कल्याणकारी प्रवृत्तियां सतत चलती रहें तभी उत्तम त्याग धर्म की सार्थकता है। त्याग धर्म के सामाजिक सरोकार का पक्ष रखते हुए पूज्य गुरुदेव ने कहा कि समाज में गरीबी इतनी नहीं जितनी कि असमानता है इसे दान के द्वारा संतुलित किया जा सकता है। कुछ के पास इतना है कि वे बिगाड़ करते हुए भी नहीं अचकचाते तो कई के पास इतना भी नहीं है कि दो जून का जुगाड़ भी कर सकें। इस दिशा में आज कुछ युवा संगठित होकर आगे आ रहे हैं जो सेवा भाव से सामाजिक समारोहों में बचे भोजन को जरूरतमंद लोगों तक पहुँचाने जैसे बेहतर कार्य कर रहे हैं जिससे वे लोग भी अपने जीवन को उन्नत बनाते हुए धर्म व राष्ट्र के विकास में अपना योगदान कर सकें। यह एक नेक काम है। हे भव्य जीवो! यदि आप अपना कल्याण चाहते हो तो कषाय, देह और विकल्पों का त्याग करके सम्यक्त्व को धारण करो तथा समाज के संतुलन में अपना योगदान सुनिश्चित करो।

## 23

### परिग्रह परिमाण करना ही श्रावक के लिए : उत्तम आकिंचन धर्म

पर्युषण पर्व की साधना के चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ते हुए आज 9वें उत्तम आकिंचन धर्म के दिन परमपूज्य गुरुदेव आचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज ने प्रातः कालीन सभा में कहा कि आज उत्तम आकिंचन धर्म का दिन है जो हमें सिखाता है कि परिग्रह दुःख का कारण है। मुनिजनों को तो लंगोटी की परिग्रह भी उतना दुख देती है जितना नाखून में चुभी हुई छोटी सी फाँस असहनीय दर्द देती है। श्रावक धर्म के निर्वाह के लिए परिग्रह परिमाण करना आवश्यक है। यदि आवश्यकता से अधिक हमारे पास में है तो उसे सहर्ष दूसरों को दें, पर पदार्थों में आसक्ति कम करें, ममत्व घटाएँ क्योंकि यह दुख का कारण है। जैसे किसी बंगले का रखवाला घर की सुरक्षा के लिए जिम्मेदार होकर भी उसमें मालिकी के ममत्व से मुक्त होता है, मंहगी कार का ड्राइवर भी मालिकीपने के भाव से सदैव अपने को उससे विरक्त रखता है, एक बैंक का कैशियर सभी प्रकार की सावधानी रखते हुए

भी मालिकी का भाव नहीं रखता। ऐसे में यदि उस वस्तु या पदार्थ का क्षय नुकसान आदि होता है उसकी टीस उसके मन में सदैव नहीं रहती।

श्रीकृष्ण गीता में स्थितिप्रज्ञ रहने का उपदेश देते हैं उसमें और अधिक दृढ़ होने की वकालत करते हैं ताकि किसी भी विषम परिस्थिति से वह प्रभावित न हो। भेद विज्ञान से ज्ञानी जन जान लेते हैं कि हम क्या साथ लाए थे और क्या साथ लेकर जायेंगे। जब यह शरीर भी अपना नहीं फिर किसी और वस्तु से ममत्व कैसा। यह ममत्व इतना खराब है कि एक बार लग जाने पर साधु संतो की शांति छीन लेता है। गुरुवर एक दृष्टांत के माध्यम से समझाते हैं—

एक साधु को रास्ते में सोने का कंगन पड़ा मिल गया उन्होंने उसे उठा लिया। अब वे हर विकट लगने वाली परिस्थिति में चेले को कहते “ध्यान रखना”। चेला असमंजस में कि हरफनमौला गुरुजी को क्या हो गया कैसी शल्य, कैसी बीमारी लग गई कि संध्या में धर्म ध्यान की जगह संसारी की तरह व्यर्थ का प्रलाप करते हैं कि जागते रहना। एक दिन गुरु के बाहर जाने पर चेले ने उस पोटली को खोला, सोने का कड़ा देखकर सारा माजरा समझ में आ गया। बिना पल गंवाए उसने वह कड़ा पास के कुएं में डाल दिया और उतने ही वजन का पत्थर अंदर रख दिया। फिर गुरुजी के वही प्रलाप करने पर चेला बोला कि डर तो गुरुजी मैं कुएं में डाल आया। अब आप निश्चिंत होकर संध्या साधना करो। सारी हकीकत से वाकिफ होने पर गुरुजी बहुत खुश हुए।

स्थिति प्रज्ञ रहकर कठोर तपस्या करते रहने से आकिंचन्य का भाव सुदृढ़ होता है। विधिपूर्वक यदि कोई जैन शासन की तपस्या करता है तो उसके शरीर को कुछ नहीं होता, किसी भी तरह उसका तप पूरा हो जाता है, इससे देश की सुख शांति बढ़ती है, परिवार और समाज का आनंद बढ़ता है। कहते हैं कि तपस्या से तो देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं। यदि सामर्थ्य है तो दान करो। कुछ लोगों ने सादा भोजन वाली भोजनशालाएं खोल रखी हैं, किसी ने प्याऊ खोल रखी है किसी ने भूखे को देखा तो उसे बुलाकर दे दिया दो रोटी का आहार दान, कोई बीमार है तो दो औषधि दान, जरूरतमंद को सामूहिक व व्यक्तिगत रूप से समाज में विद्या सामग्री का दान दो, यदि ज्ञान है तो उपदेश का दान दो ताकि समाज के व्यसन छूटे। अहिंसक बनो इससे बड़ा कोई अभय दान नहीं। हिंसक व्यक्ति से सभी डरते हैं। आप किसी से नहीं डरते यह ठीक है लेकिन एक गुण और पैदा करो कि तुमसे कोई न डरे। यह बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। आप से सभी प्रेम करें खौफ नहीं खाएं। पशु पक्षियों पर दया करो उनको समझो। श्रीमद् राजचंद्र के गृहस्थ जीवन का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि किस प्रकार राजचंद्रजी प्रेम के साथ सामने वाले व्यापारी को करुणा के साथ अपने नुकसान की

परवाह किए बिना उसे करार के बंधन से मुक्त कर दिया। यदि उनकी आसक्ति मात्र पैसे के प्रति होती तो वे उस लाचार मनुष्य से प्रेम नहीं कर पाते। इसी तरह एक शेट ने जब यह महसूस कर लिया कि धन सर्वस्व नहीं जिसे उसने पैसे न चुकाने का कारण मारने की धमकी दी थी वह गुरुमुख से आकिंचन के रहस्य को जानकर उसके पास जाकर बोला कि जब तुम पर हो जाएं तब दे देना और फिर दोनों की आंखों से अश्रुधार बह निकली। सचमुच आकिंचन्य धर्म कितना महान है।

आकिंचन्य धर्म से सीखो कि मेरा कुछ नहीं। तेरा मेरा की गिनती तो छोटी बुद्धि वाले करते हैं। या तो मेरी एक धजीर भी नहीं, नहीं तो सभी कुछ मेरा है ऐसा भाव रखो। महावीर प्रभु की वाणी को आचार्य कुन्द-कुन्द ने कहा है कि यह देह, यह वाणी कुछ भी हमारा नहीं है। हमारा चिन्तन ही हमारा है। ज्ञानी शरीर से ममत्व का भेद विज्ञान कर लेता है तो वह आकिंचन को प्राप्त कर लेता है। इस शरीर से जितना अच्छा काम कर लेता है वह कर लो। भगवान मंदिर में ही नहीं, सभी जगह हैं यदि यह समझ आत्मसात हो जाय तो दुनियाँ के झगड़े खत्म हो जायेंगे।

गुणभद्र आचार्य ने 1000 साल पहले लिखा कि किसी भी वस्तु के पीछे भागो मत। मैं कुछ नहीं हूँ मेरा कुछ नहीं है। गुरु भगवान कभी अहंकार नहीं करते। फिर हम क्यों बारबार समाज में अहं के चलते दूसरे को नीचा दिखाते हैं। इस अच्छे विचार से अकिंचन का पालन करके मोक्षमार्ग में जा सकते हैं। यदि हम अकिंचन होकर तप करते हैं तो कई सारी सिद्धि तो अपने आप हो जाती हैं। यह ज्ञान स्वरूप जैन का ही नहीं अपितु सभी प्राणियों का है इस स्वरूप पर अपनत्व आए तो व्यक्ति महान बन सकता है।

## 24

### श्रावक एकदेश ब्रह्मचर्य का पालन करके आत्मा के गुणों को प्रकट कर सकता है

दसलक्षण पर्व के अंतिम दिन उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म, 12वें तीर्थंकर वासुपूज्य स्वामी के निर्वाण एवं संवत्सरी के दिना चाणक्य फेम पद्मश्री मनोज जोषी ने गुरुवर आचार्यश्री सुनीलसागरजी के दर्शनार्थ पधार कर आशीर्वाद प्राप्त किया।

चाणक्य का नैतिक प्रेरणास्पद किरदार निभाने वाले मनोजभाई जोषी जो वास्तविक जीवन में सांस्कृतिक मूल्यों एवं सदगुरुओं के प्रति निष्ठा और समर्पण का भाव रखते हैं, उन्होंने कहा आज दशलक्षणी के अंतिम ब्रह्मचर्य धर्म, 12वें तीर्थंकर वासुपूज्य स्वामी के निर्वाण तथा दिगंबर जैन समुदाय की

संवत्सरी के स्वर्णिम दिवस पर कठोर तपस्वी, साधना मूर्ति, ध्यान योगी, इन्द्रिय-जय पथ के सच्चे पुरुषार्थी साधक आचार्य भगवन् श्री सुनीलसागरजी महाराज की चरण वंदना करते हुए धन्यता का अनुभव कर रहा हूँ। चातुर्मास आत्मा साधना आत्म शुद्धि का अवसर हमें जीवन में प्रदान करता है। धर्म तो एक जीवनशैली है जो नदी रूपी दो किनारों को संयम और व्रत रूपी किनारों में मर्यादा में बांधकर जीवन को स्व-पर के लिए उपयोगी बनाती है।

अर्थ की बात करने वाले महर्षि चाणक्य अर्थ को मात्र धन के संदर्भ में नहीं देखते अपितु समाज के प्रति निष्ठा और समर्पण की सार्थकता के रूप में नीति नियामकों के समक्ष रखते हैं। चाणक्यनीति राजधर्म की निष्ठा और नैतिकता का प्रतिरूप है जो वैयक्ति चिंतन की जगह सामुदायिक हित-चिंतन को प्राधान्य देती है और वसुधैव कुटुंबकम् की भावना का अनुसरण करती है।

आचार्यश्री सुनील सागरजी महाराज ने मनोजभाई को आशीर्वाद देते हुए कहा कि वे जैन नहीं हैं किन्तु विचार उच्च हैं, बाहरी दुनियाँ में व्यस्त रहते हुए शाकाहार पालन के प्रति कोई कोर कसर नहीं रखते और अपने कार्यक्षेत्र के माध्यम से श्रेष्ठ संस्कृति का प्रसार करने में लगे हुए हैं। चाणक्य और चंद्रगुप्त के ऐतिहासिक प्रसंग को लेकर कहा कि चाणक्य की देश के प्रति निष्ठा और समर्पण अद्भुत है जिसने एक साधारण से बालक को शिक्षित प्रशिक्षित कर नीतिसम्मत सम्राट चंद्रगुप्त बना दिया और स्वयं भी जीवन के अंत समय में संथारा संल्लेखना लेकर शांति परिणामों के साथ नश्वर शरीर का त्याग कर लिया। गुरु-शिष्य परंपरा में विश्वास का उदाहरण देते हुए बताया कि जब वे सम्राट नहीं बने थे, दुश्मन उनका पीछा कर रहे थे, उन्होंने तालाब देखकर चन्द्रगुप्त को जोर से तालाब में धक्का मार दिया और स्वयं बड़ी ही चतुराई से पहाड़ी की ओट में छिपकर बच गए। बाद में उन्होंने चन्द्रगुप्त से पूछा कि जब मैंने तुम्हें तालाब में धक्का दिया तब तुम्हारे मन में क्या विचार आया? चन्द्रगुप्त ने बड़ी ही विनय से जबाब दिया कि नहीं गुरुदेव, आप तो मुझे बनाने वाले हो, आपके द्वारा मेरा कभी कोई अहित हो ही नहीं सकता, ऐसी मेरी अकाट्य श्रद्धा है। धन्य है गुरु-शिष्य के पावन रिश्ते के विश्वास की गहराई।

आचार्य भगवन् ने कहा कि उत्तम ब्रह्मचर्य का पालन तो मुनिराज ही करते हैं किन्तु श्रावक ब्रह्मचर्याणुव्रत को अपनाकर उन विकारी और विलासी भावों से बच सकता है जो समाज में गंदकी और अपराधों को जन्म देते हैं। जो त्यागी उत्तम क्षमा आदि 9 धर्मों की निष्ठापूर्वक आराधना करता है वही शीलरत्न ब्रह्मचर्य धर्म को धारण कर सकता है और स्वयं के तथा समाज के संकटों का निवारण कर सकता है। इस संसार में संयोग ही दुख का मूल है। श्रावक एकदेश ब्रह्मचर्य का पालन करके आत्मा के गुणों को प्रकट कर

सकता है। बड़े से बड़ा जीतने वाला पहलवान भी प्रायः नारी, विकारी, विलासी शक्ति के आगे हार जाता है। ब्रह्मचर्याणुव्रत वीर्य—बल का रक्षण करते हुए ऊर्जा का संचार करता है तथा व्यक्ति को कांतिमान बनाता है। तपस्वी सम्राट् पूज्य आचार्यश्री सन्मत्तिसागरजी का जीवन उत्तम ब्रह्मचर्य से युक्त था इसलिए उनके व्यक्तित्व की एक विशिष्ट आभा थी चेहरे पर कांति थी, सम्यक्त्व की दृढ़ता थी और वाणी में अद्भुत और तथा परिणाम सरल और निर्मल जो उनके उत्कृष्ट चारित्र की दुहाई देते थे। प्रभु वासुपूज्य भगवान् जिनका आज मोक्ष कल्याणक है वे बालब्रह्मचारी थे वे राजपाट को ग्रहण करने की बजाय वैराग्य के पथ पर चलकर मोक्ष को प्राप्त हुए।

संघस्थ मुनिश्री सुधीरसागरजी महाराज की आज दशलक्षणी दरम्यान 10वें उपवास की कठोर साधना है। 70 से अधिक श्रावकों की भी उपवास साधना चल रही है यदि इसका योग करें तो लगभग 1000 व्रत उपवास हो जाते हैं। इससे राष्ट्र व समाज के हित में पावन व पवित्र वातावरण का निर्माण हो रहा है। आज के प्रवचन में मुनिश्री ने कहा कि यह जीव कब से तीव्र निद्रा में है, आँखें खुली हैं फिर भी नहीं देख रहा है। इसको देखने के लिए भेद विज्ञान करना पड़ेगा। शरीर की इन्द्रियां तो नश्वर पुद्गल की देन हैं, मोतिया आ गया तो आंख काम करना बंद कर देती है, पर्दा फट गया तो कान काम करना बंद कर देते हैं। एक दृष्टांत देकर उन्होंने संसारी जीव की दशा को समझाया—

एक राजा जो प्रजा के हितों को अनदेखी करता है, जागता हुआ भी नींद में होता है। एक द्वारपाल उसे सचेत करने की मंशा से झूटी पर आधा घंटे के लिए सो जाता है उसे 7 कोड़े की सजा होती है वह सजा झेलता हँसता है। राजा उसकी सजा बढ़ा देता है वह और हँसता है। राजा उससे हँसने का कारण पूछता है। वह कहता है राजन, मैं आधा घंटे के लिए सोया तो मुझे 7 कोड़ों की सजा मिली और आप तो कब से सो रहे अपने कर्तव्य पथ में। राजा के होश ठिकाने आ जाते हैं। आज का दिन शीलव्रत धारण करने तथा आत्म संकल्प को दृढ़ करने का दिन है, विषय विकारों से विरक्ति का दिन है।

भरत चक्रवर्ती राजपाट और भोगों के बीच रहते हुए सदैव ब्रह्म में लीन रहने वाले गृहस्थ साधक थे। उनसे भी सीख लेकर इस मायावी संसार से उपयोग बदलकर आत्मचिन्तन में लीन होकर ब्रह्मचर्याणुव्रत को सार्थक करने की जरूरत है। आचार्य गुरुवर और मुनिसंघ की पावन निश्रा में समाज के सभी लोगों ने प्रतिक्रमण के पश्चात् प्रेम से परस्पर मिच्छामि दुकडम करते हुए अपनी जानी अनजानी भूलों के लिए क्षमा याचना की और निर्मल परिणामों के साथ सभी को क्षमा किया।

## 25

## 18 भाषाओं के ज्ञाता तथा जैन धर्म के परम प्रभावक संत आचार्यश्री महावीरकीर्ति महाराज

आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज के आचार्य पदारोहण दिवस के अवसर पर विनयांजलि कार्यक्रम के अवसर पर आचार्य गुरुदेव श्री सुनीलसागरजी महाराज ने कहा कि वे अप्रतिम तपस्वी, 18 भाषाओं के ज्ञाता तथा जैन धर्म के अदभुत प्रभावक संत थे। वे परमपूज्य आचार्य श्री आदिसागर अंकलीकरजी के मेधावी एवं परम प्रभावक शिष्य थे। वे चमत्करी शक्तियों के धारक थे, पशु पक्षियों की बोली की समझ थी उनमें शास्त्र पढ़ने की विचित्र कला एवं अदभुत प्रतिभा थी उनमें, आगम के कई प्रमुख ग्रंथ उन्हें कंठस्थ थे, पन्ने पलटते पलटते वे सहज में सीख लेते थे, अभ्यासवृत्ति के धारक थे, ज्योतिष, मंत्र और औषधशास्त्र के ज्ञाता थे, एक आसन से घंटों कायोत्सर्ग में ध्यानस्थ रहना उनकी कठिन साधना का परिचायक बन चुका था, वे उपसर्ग विजेता एवं तीर्थ स्वरूप में प्रतिष्ठित थे।

एक बार सम्मेलनशिखरजी पर भील द्वारा रातभर उन ध्यानस्थ मुनिराज पर भाले की नौक उनके शरीर पर चुभाते हुए सतत उपसर्ग किया गया, गुजरात के मेहसाना शहर में उपसर्ग के परिणाम स्वरूप समाधि भी हुई लेकिन उन्होंने समता भाव को नहीं छोड़ा। नेपाल की महारानी आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी की परम भक्त बनीं, उन्होंने 3 मकारों मधु मांस मद्य का आजीवन त्याग किया और एक साधारण श्रावक की तरह उनके संघ में समर्पित रहीं। कर्नाटक से पधारे एक श्रावकश्रेष्ठी ने महावीरकीर्तिजी महाराज का पावन प्रसंग सुनाते हुए कहा कि वे उनके गांव के पास जंगल में एक गुफा में एक ही आसन पर कायोत्सर्ग में 24 घंटों से अधिक समय तक लीन रहते थे।

परम उपकारी आचार्य भगवन् कहते हैं कि सच! गुरु की महिमा अपरंपार है। गुरु-शिष्य का रिश्ता सबसे अलग है जिसमें ना हक है, ना शक, ना अपनापन है, ना परायापन, ना जाँत है, ना पौत, ना दूर, ना पास सिर्फ अपनेपन का अहसास, दूर होकर भी पास होने का अहसास। गुरु का उपकार अनंत है। वे अपने शिष्य को थोड़े से समय में अल्प परिश्रम में वह सब कुछ दे देना चाहते हैं, सिखा देना चाहते हैं जो उनके पास है जो उन्होंने सघन साधना, कठिन अध्ययन और अनुभव की पाठशाला में सीखा है, ताकि उनका शिष्य ठोकरें ना खाए। गुरु की तरह लौकिक जीवन में माँ

बाप भी बच्चे की फिक्र करते हैं अपने अनुभवों से उसे सिखाने की कोशिश करते हैं, आपत्तियों से दूर रखने हेतु सावधान करते हैं इसीलिए आज की युवा पीढ़ी उन्हें अपना सबसे बड़ा दुश्मन मानती है उनकी सयानी सीख को अनावश्यक दखलंदाजी मान अपना ही भविष्य बिगाड़ती है। अरे! गुरुजन, माता-पिता हमारी मनमानी प्रवृत्ति को अपने अनुभव की कसौटी पर कसकर, नुकसानकारक विपत्तिदायकता की समझ देकर सतत उससे बचाने की बाहर लाने की जद्दोजहद में लगे रहते हैं। वे उन्हें स्वनिर्भर बनाना चाहते हैं, भावी मुश्किलों के सामने अडिग खड़े रहना और उनका सामना करना सिखाना चाहते हैं, उनका शिष्य या बेटा जीवन में कभी हार नहीं माने, कहीं भी पीछे न रहे, इसके लिए उसे तैयार करना चाहते हैं।

आचार्य गुरुवर कहते हैं "नीति कहती है कि यदि गुरु अपना सब कुछ दे देता है तो वह मात्र एक पाद अर्थात् 25 प्रतिशत ही देता है, बाकी 25 प्रतिशत सुयोग्य शिष्य अपनी बुद्धि से ग्रहण करता है, अगला 25 प्रतिशत वह अध्ययन व अभ्यास की पाठशाला में रहकर समुन्नत करता है तथा बाकी का 25 प्रतिशत वह काल के पकने पर वक्त के साथ सीखता है। कहते हैं कि— वक्त और आचार्य दोनों ही हमें सिखाते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि आचार्य गुरुवर सिखाकर परीक्षा लेते हैं जबकि वक्त परीक्षा लेकर, ठोकरें खिलाकर सिखाता है।"

गुरुवर परम उपकारी होते हैं। कुछ लोग गुरु के सिखाने पर सीख जाते हैं और जो नहीं सीखते वे वक्त की ठोकरें खाकर सीखते हैं और कई बार हम ठोकरें खा खाकर सीखने लायक तक नहीं रह जाते। उन्हें हमारी फिक्र है, हमें लायक बनाने की चिंता है इसलिए कठोरता से हमें सिखाते हैं, इसके लिए डांटते हैं जो हमें बुरा लगता है। हे भव्य आत्माओं समझो! यदि एक फिल्म का डायरेक्टर सही तरह से अभिनेता को न समझा पाए अथवा अभिनेता डायरेक्टर की सीख पर ध्यान न दें तो एक फिल्म का जितना ही नुकसान होता है जबकि गुरुजन व माता-पिता की सीख न मानने से तो जिंदगी बर्बाद हो जाती है। इसलिए गुरुजनों से सीखने हेतु हम श्रद्धावान बनें उनकी चर्या व साधना में सहायक बने अपने आप को निज आत्म स्वरूप में ढालने का तदनरूप पुरुषार्थ करें। आज आचार्य भगवन् महावीरकीर्ति महाराज के पदारोहण दिवस पर मुनिसंघ में से कई साधु महाराजों व माताजी का दीक्षा दिवस स्मरण किया गया तथा ब्रह्मचारी सम्मेलन ने 7 प्रतिमा के व्रत धारण किए।

आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज के आचार्य पदारोहण दिवस के अवसर पर विनयांजलि कार्यक्रम के अवसर पर प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्रभाई

मोदीजी के बड़े भाई श्री सोमभाई मोदी परमपूज्य गुरुवर चतुर्थ पट्टाचार्य आचार्य श्रीसुनीलसागरजी महाराज के दर्शनार्थ पधारे एवं आशीर्वाद प्राप्त कर जीवन की धन्यता का अनुभव किया। तन मन धन से समाज सेवा के क्षेत्र में समर्पित, गुरुचरणों में नत होकर सरल स्वभावी श्री सोमभाई ने कहा कि मैं प्रधानमंत्री का भाई नहीं अपितु नरेन्द्रभाई का बड़ा भाई हूँ क्योंकि उन पर तो सारे देश का समान हक है। सरकारी सेवा से निवृत्त होकर श्री सोमभाई अपने गृहनगर वडनगर में समाजसेवा का मानवीय कार्य कर रहे हैं। वृद्धाश्रम शुरू करने के साथ साथ वृक्षारोपण, रक्तदान के शिविरों का आयोजन तथा कॉलेज के युवाओं में थेलेसीमिया जैसी गंभीर बीमारी जड़ से नेस्तनाबूत करने की मुहिम शुरू करके विवाह हेतु कुंडली मिलाने से पूर्व थेलेसीमिया के परीक्षण पर जोर दे रहे हैं।

## 26

### शिक्षाव्रत-प्रोषधोपवास आत्मा की शुद्धि के लिए आवश्यक

परम पूज्य गुरुदेव ने शिक्षाव्रत प्रोषधोपवास पर व्याख्यान देते हुए कहा कि वास्तविक प्रोषधोपवास 16 प्रहर अर्थात् 48 घंटों का होता है जिसमें साधक निराहार रहते हुए धर्म की साधना करता है। जिस दिन का उपवास होता है उससे पिछले दिन आधे दिन के बाद से अन्न जल का त्याग कर देना दूसरे दिन उपवास करते हुए एकान्त वास, जिनालय में, मुनि के समीप वास करते हुए स्वाध्याय मनन चिन्तन करना सारे अध्यावसायों का उस दिन के लिए त्याग करते हुए, मन, वचन और काय तीनों गुप्तियों के साथ सर्व इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर शांत स्वभाव से मोक्ष मार्ग का चिन्तन करना। तत्पश्चात् अगले दिन दोपहर को भोजन आदि ग्रहण करना। उपवास में नींद को जीतकर आलस्य को त्यागकर परिणामों की निर्मलता बढ़ाने का पुरुषार्थ किया जाता है।

आचार्य भगवन् कहते हैं कि प्रोषधोपवास का विशेष फल मिलता है। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय के कारण वह सकलव्रती मुनिराज तो नहीं हो सकता किन्तु उतने समय के लिए उस साधक को सकलव्रती की तरह समान फल प्राप्त होता है क्योंकि उसने महाव्रती की तरह उतने समय के लिए सबका त्याग किया है। जो किसी भी जीव के लिए, आध्यात्मिक पथ के साधक के लिए विशेष उपलब्धि से कम नहीं है। परमहितेषी आचार्य अमृतचंद्राचार्यजी कहते हैं

कि प्रोषधोपवास में समस्त आरंभ का त्याग करते हुए, ममत्व व कषाय को छोड़ते हुए, जप तप और सामायिक के साथ करना चाहिए।

आर्यिका सुधर्ममती माताजी ने क्रोध का स्वभाव, क्रोध का कारण, क्रोध की परिणति तथा उससे दूर रहने के पुरुषार्थ पर हृहयस्पर्शी संबोधन देते हुए कहा कि जहाँ अपनी कोई अपेक्षाएँ नहीं रहती वहाँ हम सहज ही व्यवहार करते हैं किन्तु जब अपेक्षा की उपेक्षा होते ही क्रोध आने लगता है। क्रोध कहीं बाहर से नहीं आता वह अपने अंदर के विकारों से प्रकट होता है। निमित्तों को हम गुस्से का कारण मानते हैं तो बताओ क्या कभी पार्श्व प्रभु ने क्रोध किया? नहीं न, उन्होंने तो क्रोध पर अप्रतिम विजय प्राप्त कर सकल कर्मों का नाश कर लिया। क्रोध में हम संसार बढ़ाते चले जाते हैं। भ्रम तो तब होता है जब हम क्रोध को ही पावर, शक्ति ताकत प्रभाव मान लेते हैं। गुस्सा करने से ही बालक अथवा अनुयायी काम करते हैं ऐसा भ्रम पाल बैठते हैं। अरे! क्या आपने कभी सोचा कि आप स्वयं प्यार से कहने पर काम करना पसंद करते हैं या गुस्से से कहने पर? यदि किसी को मनवाने का तरीका क्रोध ही होता तो क्या आचार्य भगवन् यही तरीका नहीं अपनाते? वो क्यों हमें वात्सल्य से समझाते? नहीं गुस्सा हमें छोड़ना ही पड़ेगा। कोई यह भी कह सकता है कि जब निमित्त सामने आ जाता है तो गुस्सा रोक नहीं पाते। गलत है बंधुओ तुम्हारी यह धारणा। अरे! बताओ यदि तुम्हारे घर के सदस्य बीमार पड़ जाएं तो क्या तुम भी बिस्तर पकड़ कर बैठ जाओगे? नहीं न। तो फिर क्रोध करने वाले के सामने उसी के समान अथवा उससे बढ़चढ़ कर प्रतिउत्तर क्यों देते हो? उस समय के लिए शांत रहना सीखो। हर रोज सुबह इस तरह के निर्णय करो, संकल्प लो कि कम से कम आज के दिन हम किसी भी परिस्थिति के आने पर भी क्रोध नहीं करेंगे। आचार्य भगवन् कहते हैं कि फिर देखो कि तुम्हारे जीवन में क्या परिवर्तन आता है। तुम्हारी दशा—दिशा दोनों बदल जायेंगी, जीवन में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होगा और कषाय मंद पड़ते पड़ते मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होगा। हे भव्य जीवों! चैतन्य आत्मा को निज स्वभाव में रमाना सीखो अणुव्रत, गुणव्रतों और शिक्षाव्रतों को धारण करो तथा अनर्थदण्ड से दूर रहो। इसी मंगल कामना के साथ आदि विधाता, आदि तीर्थकर, महादेव आदिनाथ भगवान की जय।

**करुणामूर्ति पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री सुनील सागर जी ने कराया "धर्म की शरण प्राणिमात्र के लिए" का साक्षात्कार—** सांयकाल अद्भुत नजारा जब आचार्य भगवन् ससंघ स्वाध्याय कर रहे थे तभी एक मूक बछड़ा दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया। वात्सल्यमूर्ति करुणा के सागर आचार्य सुनील सागरजी महाराज ने ज्योंही उस पर पिच्छी से आशीर्वाद दिया वह निरीह आँखों से गद्गद् होता हुआ वहाँ से अपने गंतव्य की ओर शांति से चला गया। गुरुदेव

ने कहा कि धर्म की शरण में मनुष्य को ही नहीं अपितु समस्त प्राणियों को आने का अधिकार है, सभी उसकी छत्रछाया में अपना कल्याण कर सकते हैं।

आचार्यश्री के दर्शनार्थ गुजरात विधान सभा के दंडक एवं खेड़ब्रह्मा विधानसभा क्षेत्र से विधायक तथा छत्तीसगढ़ कांग्रेस के मुख्य सचेतक श्रीमान अश्विनभाई कोतवाल श्रद्धा के साथ सीधे चलकर आचार्यश्री के साधना कक्ष में पहुँचे और विनयपूर्वक वंदना कर अपने जीवन में धन्यता का अनुभव किया। गुरुदेव ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि गुजरात की राजनीति में गांधीजी के सिद्धांत यथावत् हैं और यहाँ के राजनेताओं में भी धर्म संस्कृति अहिंसा और गुरुओं के प्रति सम्मान है उसीसे राज्य प्रगतिशील है।

## 27

### व्यक्तित्व विकास के लिए स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता में भेद जरूरी

कृपालु आचार्यश्री ने अमृतवाणी की वर्षा करते हुए कहा कि आज का अधिकांश युवा स्वतंत्रता की अंधी दौड़ में घर—परिवार, समाज, धर्म, संस्कृति सभी के सामने विद्रोह कर रहा है जो सही नहीं है। आत्मार्थी बन्धुओ! स्वतंत्रता व स्वच्छंदता के बीच पतली भेद रेखा है जिसको जाने बिना स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदता का दुराचरण किया जा रहा है, संयम, अनुशासन व मर्यादाओं की उपेक्षा की जा रही है, उसे भलीभांति नहीं समझा जा सकता। आज इसी मदास्थता, मोहास्थता में युवा आवेश में आकर होशोहवाश खोकर माता—पिता और गुरुजनों की जीवनोपयोगी सीख को जीवन में आत्मसात नहीं करके आत्मघात को खुला निमंत्रण दे रहा है। गुरुदेव ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में समझाते हुए कहा कि—

**क्या गंगा, क्या यमुना, क्या साबरमती की धार।**

**वह घर तीर्थ समान है, जहाँ बच्चे करते माता—पिता का सत्कार।।**

जिस तरह नदी “किनारे” के बिना उपयोगी नहीं बनती, उसी प्रकार जीवन भी संयम रूपी बाड़ के बिना उपयोगी नहीं बन सकता। माँ—बाप तो संतानों का भला ही चाहते हैं। संतान जो कुछ जोश में नहीं देख पाती उसे इन बुजुर्गों की अनुभवी आँखें भांप लेती हैं और कड़वे कदम उठाकर भी युवाओं को आगाह करती रहती हैं और वे इसीलिए इन युवाओं की नजर में सबसे बड़े दुश्मन होते हैं। कुछ तो इतने कुपात्र होते हैं कि संवेदनहीन बनकर उन्हें वृद्धाश्रम के दरवाजे पर पटक आते हैं। वृद्धाश्रमों का होना खराब नहीं है क्योंकि वे निराश्रयों के जीवन का आधार बनते हैं किन्तु इस तरह से माता—पिता का जो अपमान होता है वह सबसे शर्मजनक मानवता को लजाने वाला कार्य है।

बंधुओ इस कड़वाहट के पीछे उनका अथाह प्यार व चिंता छिपी हुई है जो खतरों से आपका जीवन सुरक्षित करना चाहती है, उसे तराशना चाहती है उसे सदगुणों की खुशबू से सुवासित करना चाहती है। वास्तव में माता-पिता और गुरुजनों की सीख रक्षाकवच है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन मर्यादा का सबक है इन भटके हुए युवाओं के लिए। विवेक रहित ज्ञान भी किस काम का? जब कीमती वृक्षों आदि की रक्षा के लिए सुरक्षा आवरण रखा जाता है तो जीवन जैसी अमूल्य निधि की सुरक्षा के लिए अनुशासन, संयम और मर्यादा का आवरण नहीं होना चाहिए?

प्रभु महावीर का अहिंसा का मार्ग मर्यादा में रहना सिखाता है। दुनियाँ में किसी को हैरान-परेशान करने से बड़ा कोई पाप नहीं तथा किसी को हंसाने से बड़ा पुण्य नहीं है। गांधीजी के लिए सत्य अहिंसा से पहले था। आचार्यश्री कहते हैं कि यदि जीवन में अहिंसा होगी तो सत्य स्वतः ही प्रकट हो जायेगा। सत्य और अहिंसा दोनों ही जीवन में आवश्यक हैं। वचन से सत्य कहना ही पर्याप्त नहीं अपितु सत्य कहने की रीत को ऐसा बनाना चाहिए कि वह लोगों का हृदय परिवर्तन कर सके। इसी प्रकार हिंसा सिर्फ काय से ही नहीं होती अपितु मन से विचारों से भी होती है। जो अधिक घातक है। इसलिए मन पर नियंत्रण होना जरूरी है। अबुद्धि, प्रमादवश जो वचन बोलने में आते हैं वे प्रायः असत्य ही होते हैं। असत्य के 4 भेद कर सकते हैं— (1) नास्तिरूप असत्य अर्थात् उपस्थित है फिर भी ना कहना, (2) अस्तिरूप असत्य अर्थात् जो नहीं है फिर भी हाँ कहना, (3) कुछ अलग ही कथन करना अर्थात् अन्यथा कह देना तथा (4) मर्मभेदी तरीके से या घुमाफिराकर जबाब देना आदि। आजकल तो मोबाइल का दूषण भी इतना बढ़ गया है कि लोग सरे आम झूठ बोलने से भी नहीं सकुचाते, भय नहीं खाते कि कदाचित् आमना-सामना हो जाने पर कैसा लगेगा? वास्तव में असत्य बोलने से चरित्र का नाश होता है। आचार्यश्री की संघस्थ आर्यिका आराध्यमती माताजी ने स्वतंत्रता की आड़ में चल रही स्वच्छंदता की स्थिति पर संयम की लगाम की जरूरत समझाते हुए कहा कि जिस प्रकार बिना चिमनी का दिया हवा के एक झोखे से बुझ जाता है उसी प्रकार मर्यादा वगैरे जीवन नष्ट हो जाता है। इससे युवाओं को तो दुष्परिणाम भोगने ही पड़ते हैं किन्तु परिवार समाज व राष्ट्र भी दुर्दशा से बच नहीं पाता। हम सभी भलीभांति जानते हैं कि एक पतंग तभी तक सुरक्षित खुले अनन्त आकाश में उड़ान भर सकती है, अठखेलियां कर सकती है जब तक वह अपनी डोर से बंधी हुई रहती है वरना तो कटी पतंग की दशा से हम सभी वाकिफ ही हैं। माता-पिता और गुरुजन उस दिए पर रखी उस चिमनी की तरह हैं जो युवाओं के व्यवहार को संयम, मर्यादा और अनुशासन में बांधे रखते हैं और जीवन के आन्तरिक व बाह्य अस्तित्व की रक्षा करते हैं, रक्षा कवच बनते हैं कड़वे बोल बोलकर भी जीवन में प्रभुत्व प्रकटाने का मार्ग प्रशस्त करते रहते हैं।

## 28

## बर्थ डे, व्यर्थ डे न बन जाय इसका रखें ध्यान

आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज का  
42वां अवतरण दिवस पर विशेष व्याख्यान

आचार्य भगवन् श्री सुनीलसागरजी महाराज ने आज अपने 42वें अवतरण दिवस पर परमपूज्य गुरुदेव तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागरजी को श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए कहा कि—

गुरु का आशीष शिष्यों को ऊँचा उठा देता है।  
लोगों की पलकों पर तो ठीक, सिद्धालय में बिठा देता है॥

गुरु कृपा से उनका जीवन सफल हो गया, सार्थक हो गया। वीतरागी गुरु के सानिध्य में सभी काम बन जाते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि संसारी जीव उनसे सांसारिक काम पूर्ण होने की आकांक्षा कर बैठता है जबकि मोक्षमार्गी जीव उनका सानिध्य पाकर अपने परिणाम विशुद्धि की उत्कृष्टता को पाने की कामना व पुरुषार्थ करने का आशीर्वाद मांगता है। आचार्य भगवन् के जन्म दिन पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के अनुज श्री पंकजभाई मोदी आशीर्वाद लेने हेतु पधारे। उन्होंने कहा कि जैन धर्म का सानिध्य व संस्कार उन्हें बचपन से ही मिला जब अपने गांव वडनगर में रहते थे इसीलिए आज भी महान संत के दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस अवसर पर गांधीनगर के विधायक शंभुजी, कडी के विधायक सोलंकीजी, एडीशनल कलेक्टर, यंगलीडर की प्रधान सम्पादिका नीलम जैन, पुलिस प्रशासन से जुड़े आला अधिकारियों ने सन्मति समवशरण में पधारकर तथा गुरुवाणी का श्रवण कर अपने जीवन को कृतार्थ महसूस किया।

आचार्यश्री ने जीवन की नश्वरता को समझाते हुए कहा कि जीवन को परोपकार व आत्मकल्याण की दिशा में ले जाकर ही सार्थक बनाया जा सकता है। महत्वपूर्ण यह नहीं कि हम कितना जिए अपितु जरूरी यह है कि हम कैसे जिए हैं। प्रायः जन्म दिवस मनाते समय हम भव का अभिनंदन करते हैं जो सही नहीं है। जन्म मरण और जरा अर्थात् बुढ़ापा दुःख के कारण हैं हमें मनुष्य जन्म पाकर इस तरह से पुरुषार्थ करना है कि इसके बंधन से मुक्त हो जाएं। इसलिए इस तन से इस जीवन से सांसारिक सुख की कामना करना अच्छी बात नहीं है। हमें तो जन्ममरण का नाश करने की भावना भानी चाहिए। हे भव्य जीवों! भव के अभाव का अनुभव करने में ही बुद्धिमानी है।

आचार्य अमितगतिजी योगसार में लिखते हैं कि घर-गृहस्थी में अच्छा लगना भव को बढ़ाने की निशानी है। आत्मकल्याण हेतु कुछ ऐसा हो कि जीवन

हमारे लिए उपयोगी बन जाए। कबीर दासजी संसार की असारता बताते हुए कहते हैं कि—

**“चलती चक्की देखकर दिया कबीरा रोय।  
दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।”**

अर्थात् जन्म—मरण को संसार रूपी दो पाटों के बीच में पड़कर कोई भी साबुत नहीं बच सका है। अतः समय रहते सँभलो और सदगुरु की शरण हो जाओ। वे अपने पुत्र कमाल के माध्यम से वे पुनः कहते हैं कि—

**“चलती चक्की देखकर दिया कमाल हँसाय।  
जो कीली के पास रहे ताकू कछू ना थाय।”**

अर्थात् लेकिन जो सदगुरु रूपी कील के आसपास रहता है, उनकी शरणागत हो जाता है उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

आचार्य अमितगतिजी से किसी ने प्रश्न किया कि यदि मूर्च्छा परिग्रह है तो वह ममत्व तो सभी के होता है अर्थात् सभी परिग्रही हैं। आचार्य भगवन् कहते हैं कि नहीं ऐसा बिल्कुल नहीं है। मुनिराजों के 10 गुणस्थान तक ममत्व पाया जाता है। लेकिन मुनिराज व श्रावक दोनों के भाव निमित्त के संयोग से अलग अलग होते हैं। उदाहरण के लिए किसान जो अहिंसक रूप आजीविकोपार्जन करता है, सभी का अन्नदाता बनता है उसके परिणाम शुभ रहते हैं वहीं दूसरी ओर एक माछीमार जो हिंसक आजीविका में रत है उसके परिणाम अशुभ ही रहते हैं। परिणामों की तीव्रता और मंदता से बंध की तीव्रता—मंदता स्थापित होती है। इसलिए आप सभी भी अपना जनमदिन अवश्य मनाएं किन्तु उसमें रुचि नहीं रखें, जीवन को मोक्षमार्ग, धर्मध्यान और मानवता के समर्पित करें, दूसरों के लिए जीवन समर्पित करें तभी इसकी सार्थकता है। इस संदेश को अपने जीवन में अच्छी तरह उतार लो—

**“अपने दुखों में रोने वालो, मुस्कुराना सीख लो,  
औरों के दुख—दर्द में काम आना सीख लो।  
जो खिलाने में मजा है वह खाने में नहीं,  
जिंदगी में दूसरों के काम आना सीख लो।”**

क्योंकि वृक्ष तो बहुत हैं किन्तु उनमें से प्रसिद्ध बहुत थोड़े ही होते हैं, फूल तो बहुत होते हैं किन्तु उनमें से प्रसिद्ध बहुत थोड़े ही होते हैं। जो फल देते हैं, वे वृक्ष ही प्रसिद्ध होते हैं तथा जो फूल खुशबु देते हैं, वे ही प्रसिद्ध होते हैं। और लोग वे ही प्रसिद्ध होते हैं जो दूसरों के काम आते हैं। सच में मनुष्य वही है जो दूसरों के काम आता है जिसमें दूसरों के प्रति संवेदना है।

आज सन्मति समवशरण में एक मूकवधिर विद्यालय के 65 बच्चे और उनके साथ शिक्षिका अनूप बहन आचार्य भगवन् के आशीर्वाद हेतु पधारे। आचार्यश्री ने समाज को संबोधित करते हुए कहा कि सभी को किसी न किसी

तरीके से दिल खोलकर ऐसे बच्चों की मदद अवश्य करनी चाहिए। यदि दूसरों के होठों पर मुस्कराहट लाने के लिए अपने आपको तन मन धन से समर्पित कर देते हैं तो हम मानव जीवन को सही मायनों में सफल बना देते हैं। बाकी अपने दुख में रोने वाले खुद-स्वार्थी और पशु-पक्षी भी होते हैं। भगवान महावीर स्वामी कहते हैं कि दुखी मत हो, दुख में भी सुख खोजना सीखो। साधनों की कमी, शरीर की खामी का रोना मत रोओ, हताश ना हो, अपने आप को चैतन्य आत्मा समझो, इसके ज्ञान स्वरूप को जाने और हर परिस्थिति में अपने आप को पुरुषार्थी बनाओ। इन्द्रियां तो शरीर रचना मात्र हैं इनकी कमी या अक्षमता को लिए आंसू बहाना व्यर्थ है।

सफलता के परचम वे भी लहराते हैं जिनके एक हाथ नहीं, आँख नहीं, कान नहीं। हम धीर-गंभीर साहसी बनकर घटनाओं का मूल्यांकन एवं पटाक्षेप करना सीखें न कि उससे घबड़ाकर अच्छे काम करना इसलिए बंद कर देने चाहिए क्योंकि लोग उसकी सराहना नहीं करते।

जब पुण्य का उदय आयेगा तब उसको महत्व अवश्य मिलेगा। 25 साल पहले एक श्रेष्ठ उद्देश्य से मूकबधिरों की सेवा के लिए शुरु की गई यह संस्था इसका उदाहरण है। युवाओं को, जैन समाज को उदारता दिखाते हुए अलग अलग तरीके से इस तरह के सेवाकीय प्रयासों में जुड़ जाना चाहिए। अपना रोना छोड़कर हम समाज में खुशी बाँटे, सभी आत्माओं में परमात्म स्वरूप को देखें किसी से ईर्ष्या न करें, अहिंसा, शाकाहार, प्रेम, सहयोग व वसुधैव कुटुंबकम् की संस्कृति को बढ़ावा दे और सद्भावना रखें तो साधन, संसाधन अपने आप बड़े होते चले जायेंगे। जरूरतमंदों के प्रति संवेदनशीलता रखें, जरूरतमंद की समय रहते सहायता करें और उनके भले के लिए प्रार्थना करें क्योंकि हृदय से की गई प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं जाती।

## 29

### परोपकारी वीतरागी दिगम्बर संत सदाचार की संस्कृति के वाहक हैं

कोई दौलत पे नाज करते हैं, कोई शौहरत पे नाज करते हैं।  
हमें मिला है प्रभु महावीर स्वामी का वीतरागी जिन धर्म।  
इसलिए हम अपनी किस्मत पे नाज करते हैं।।

चर्याचक्रवर्ती आचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज ने आदर्श जीवन के निर्माण व सृजन में माता-पिता और गुरु की महिमा बताते हुए कहा कि व्यक्ति के जीवन में दो गुरु होते हैं— माता-पिता आरंभिक गुरु तथा जीवन को आत्मोन्नति के शिखर की ओर ले जाने वाले दीक्षा गुरु। कितने शर्म

की बात है कि हम प्रमादवश, मानवश, कषायवश, दुष्टतावश अपने इन उद्धारकों का सम्मान करना, इनकी परवाह करना भूल जाते हैं, इनको हम बे-सहारा छोड़ देते हैं और धार्मिक बनने का दिखावा करते हैं। अरे आत्मार्थिओ! यदि तुम मूर्ति पूजा का दशासं भी इन माता-पिता और गुरु की सेवा में समर्पित कर दोगे तो अपने जीवन को सार्थक बना लोगे।

इस सदाचार की संस्कृति के वाहक हमारे पूर्वाचार्य पूज्य कुन्दकुन्द स्वामी, समन्तभद्राचार्य आदि तो थे ही किन्तु वर्तमान के आचार्य श्री आदिसागर अंकलीकरजी महाराज, आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज तथा आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराज आदि ने सदाचार-अहिंसा की संस्कृति के वाहक बनकर अपना सारा जीवन इसकी रक्षा व प्रचार-प्रसार में लगा दिया और इस नेक मकसद से विकट परिस्थितियों में पीछे नहीं हटे। इन वीतरागी गुरुओं ने विषमतम परिस्थितियों में भी अपने ध्येय, कठोर साधना, तपस्या और सदाचार रूपी सकल संयम चरित्र का दामन नहीं छोड़ा तथा समाज के विघ्न प्रदाता संतोषियों द्वारा किए गए उपसर्गों को सहते हुए भी इस अहिंसक संस्कृति के आदर्शों को जन जन तक पहुँचा कर जैन धर्म को जन जन का धर्म बनाने में मील का पत्थर बने। जैन धर्म को दक्षिण से उत्तर, पूर्व और पश्चिम की तरफ निकालने हेतु भरसक धर्म प्रभावना करते हुए वात्सल्यमूर्ति आचार्य विमलसागरजी तथा तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागर जैसे अनमोल रत्न खोजकर देकर इस मानव समुदाय पर बड़ा उपकार किया। मुगल काल में दिगंबर जैन धर्म पर इतना दबाव न बना कि उनके अनुयायियों को वस्त्र आदि धारण करने पड़े। दक्षिण के भट्टारक जी इसी परंपरा में रहते हुए जैनधर्म का रक्षण करते रहे उनके द्वारा स्थापित केन्द्र आत्मकल्याणकारी संस्कारों की रक्षा केन्द्र बने।

गुरुदेव कहते हैं जैन संख्या बल में भले ही कम किन्तु इस कम का गम मत करो। आदर्श की उत्तमता सभी पर भारी पड़ती है। ऐसे कई उदाहरण इतिहास के स्वर्णिम पन्नों पर दर्ज हैं जहाँ जैनों ने देश हित में बिना किसी हिचक के अपने खजाने खोल दिए, बहुत कुछ नुकसान सहकर भी सोने की तरह दमकते रहे और अपनी कांति से जरूरतमंदों का अवलंबन बनते रहे। इसलिए हे भव्यजीवो! अपनी अच्छाइयों को बढ़ाते हुए इस अहिंसक जीवदया के फलक का विस्तार करो संकुचित मत बनो। जिस प्रकार थोड़े से फूल बहुत सारी खुशबु बिखेर देते हैं उसी तरह हम भी इस महान संस्कृति के वाहक बने। सच ही कहा है कि "दायरा ए दिल नहीं किन्तु दरिया दिल बनो"

यदि देश में जैन नामधारी नहीं अपितु जिनधर्म के पालक जिन धर्म में सच्ची श्रद्धा रखने वाले लोगों की संख्या बढ़ती है तो देश में बूचड़ खानों की जगह गौशालाओं की स्थापना होती रहेगी, दया करुणा व प्रेम का सरोवर बहता रहेगा, मूक पशु-पक्षियों को अभय मिलता रहेगा। बिना किसी गणितीय हिसाब-किताब के जरूरतमंदों को यथायोग्य यथासमय मदद मिलती रहेगी तब न कोई आपस में लड़ेगा, न कोई वैर भाव रखेगा और न ही कोई किसी से द्वेष करेगा अपितु वह जैन देश, समाज व स्वयं के निर्माण में सदा तत्पर रहेगा। जैन संस्कृति सदाचार, शाकाहार, व्यसन मुक्ति व कमजोरों का सहारा बनने की संस्कृति है किन्तु कायरता की, उदासीनता की कदापि नहीं। आज आए दिन जैन साधुओं पर हमले हो जाते हैं क्या है ये सब? अरे जैन समाज को इतना सशक्त बनाओ कि कोई इस तरफ आँख उठाने की जुर्रत ही ना करे, खुले आम कत्ल की साजिश ना करे, पशु पक्षियों का कत्ले आम ना करे। जैन धर्म न तो हिंसा में धर्म मानता है और न ही किसी की हिंसा का किसी भी रूप में समर्थन करता है वह मानव मात्र के लिए ही नहीं अपितु प्राणिमात्र के उत्कृष्ट जीवन की कामना करता है एवं तदनुरूप व्यवस्था करता है। जैन समाज की विकृतियां खत्म हों, विलासिता की जगह हम जरूरतमंदों को ऊपर उठाने पर खर्च करें, साधनों का मन वचन काय से सदुपयोग करें तो अत्यन्त संतोष व सुकून मिलेगा। जैन धर्म तो यहाँ तक कहता है कि हमारा प्रतिद्वन्दी भी हमारा शत्रु नहीं है वह अपने ढंग से प्रगति करे और हम अपने ढंग से किन्तु रहें प्रेम से, मिलजुलकर तथा दिगंबर संतो द्वारा स्थापित कठोर साधना के मार्ग को अपने जेहन से एक पल के लिए भी विस्मृत न होने दें क्योंकि यही एकमात्र आत्म कल्याण का मार्ग है, सभी को इसी तरफ लौटना पड़ेगा। भोग-परिग्रह आसक्ति में कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती।

आज पढ़े लिखे लोग शाकाहार, अहिंसा के व्रत पालन में तरह तरह की मजबूरियां गिनाते हैं लेकिन हमारे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदीजी के व्रत संकल्प का उदाहरण अनुकरणीय है जो अमेरिका में रहते हुए भी नवरात्रि के उपवास कर सके तो हम क्यों शाकाहारिता और रात्रि भोजन त्याग का व्रत पालन दृढ़ता के साथ नहीं कर सकते? आज पश्चिमीकरण के प्रभाव में हम अपने संस्कारों से इतने भटक गए हैं भ्रमित हैं कि हरा निशान देखकर ही किसी डब्बा बंद वस्तु को शाकाहारी एवं सेवन योग्य मान लेते हैं। वस्तुतः यदि उसके मिश्रण को ध्यान से पढ़ें तो हम पायेंगे कि विदेशी वस्तुओं में कई न खाने योग्य अभक्ष्य पदार्थ मिले हैं। अतः संभव हो वहाँ तक इनके उपयोग से बचना चाहिए तथा घर में बनी वस्तुओं का ही उपयोग करना चाहिए।

## 30

## जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, अपितु जन-जन का धर्म है

गुजरात राज्य के शिक्षामंत्री श्री भूपेन्द्र सिंह चुणास्मा आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज के दर्शन कर अभिभूत हुए। उन्होंने कहा ऐसे संत के दर्शन बहुत नसीब से मिलते हैं। मैं बहुत पुण्यवान हूँ जो मुझे आचार्य प्रवर के दर्शन प्राप्त हुए

गुजरात राज्य के शिक्षामंत्री श्री भूपेन्द्र सिंह चुणास्मा ने आचार्यश्री सुनील सागरजी महाराज के दर्शन किए और अभिभूत होते हुए अहिंसा व प्रेम का संदेश देने वाली जैन संस्कृति को सराहा और कहा कि जैन दर्शन व जैन धर्म हमें अपनी भाषा और भारतीय संस्कृति से जोड़ता है। उन्होंने धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठकर पूज्य गुरुदेव से बहुत ही मार्मिक प्रश्न किया कि क्या जन जन के उद्धारक प्रभु महावीर स्वामी का समवशरण सिर्फ जैनों के लिए था? तब गुरुदेव ने कहा कि मंत्रीजी ने बहुत ही महत्वपूर्ण व प्रासंगिक प्रश्न उठाया है। वास्तव में जैन कोई सम्प्रदाय नहीं हैं, अपितु यह तो जन जन का धर्म है, यह उनका धर्म है जो अहिंसा का पालन करते हैं, जो अपने आचार-विचार से प्रेम और शांति का संदेश देता है फिर जरूरी नहीं कि वह स्वयं नाम के साथ जैन भी लिखे। वास्तव में कोई जन्म से नहीं अपितु कर्म से जैन बनता है। माँ के पेट से कोई ब्राह्मण या शूद्र पैदा नहीं होता, जैन दर्शन के अनुरूप पुरुषार्थ करके कोई भी जैन कहलाने का सच्चा अधिकारी बन सकता है। यदि जैन कुल में जन्म लेने पर भी विपरीत मिथ्या आचरण करते हैं तो ऐसे लोग स्वयं का तो विनाश करते ही हैं साथ ही अपने बुजुर्गों का सिर भी शर्म से नीचा कर देते हैं। गुरुवर कहते हैं कि जैन होने का मतलब है— अहिंसादि अणुव्रतों का पालन करने वाला, तीन मकार मधु, मद्य, मांस का त्यागी, भक्ष्य-अभक्ष्य का विवेक रखने वाला, रात्रि भोजन का त्यागी, पानी छानकर पीने वाला।

जैन धर्म अनादिनिधन है। श्री आदिनाथ भगवान आदि देव हैं जिनकी मान्यता इस धरा पर कई अलग अलग स्वरूपों में दिखाई देती है। आदिवासी समुदाय तो आदिनाथ के समय से ही जंगलों में निवास करता है कतिपय उनमें से कुछ लोगों के संस्कार बिगड़ गये हों किन्तु यथासमय यथायोग्य मार्गदर्शन मिलते ही वे भी सत्य और अहिंसक मार्ग पर चल पड़ते हैं। मंत्री महोदय का कहना था कि जिस रास्ते पर आप जैसे संतों के चरण पड़ जाते हैं वहाँ उपद्रव, दंगा-फसाद नहीं होते, दुर्मिक्ष नहीं होता लोग भूखे नहीं रहते।

आचार्यश्री ने मंत्री महोदय को बताया कि प्रायः यह मान्यता है कि संस्कृत सबसे प्राचीन भाषा है किन्तु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि

प्राकृत भाषा भारत में बोली जाने वाली सबसे प्राचीन भाषा है। इस प्राकृत भाषा में प्राचीन जैन साहित्य का अकूत भंडार भरा पड़ा है। जैन धर्म का मानव समुदाय पर अपार उपकार है। आदि तीर्थंकर ऋषभ देव ने अपनी बड़ी पुत्री को ब्राह्मी लिपि का ज्ञान दिया था तथा छोटी पुत्री सुन्दरी को अंक विद्या सिखाई तथा पुत्रों के माध्यम से जन जन को जीवकोपार्जन हेतु असि-मसि-कृषि विद्या वाणिज्य तथा शिल्प आदि का शिक्षण प्रदान किया। जैन धर्म का भारतीय संस्कृति के विकास व उत्थान में यह योगदान जानकर शिक्षामंत्री कृत-कृत हो गए।

दशलक्षण पर्युषण महापर्व के अंतिम दिन क्षमावाणी की पावन बेला में मानव जीवन में इसकी उपयोगिता को लेकर गुरुदेव ने कहा कि हम सभी अपने जीवन में क्षमाभाव अपनाएं। इसके लिए परंपरागत रूप से “मिच्छामि दुक्कडं” कहने का चलन जरूर है किन्तु क्षमापना के लिए सही प्राकृत शब्द “मिच्छा मे दुक्कडं” है। त्याग तपस्या करने के बाद भी यदि जीवन में क्षमा, दया, मैत्री भाव प्रकट नहीं हो सके तो सब व्यर्थ है।

प्राकृत भाषा में कहा गया है— “खम्मामि सव्व जीवाणां, सव्वे जीवा खमन्तु मे। मित्ती मे सव्व भूदेसु वेरं मज्जं ण केणवि” इस गाथा में 4 कषायों का शमन होता है, जब मान कषाय का शमन होता है तभी हम क्षमा कर पायेंगे, ईर्ष्या और अहंकार खत्म होगा तो हम हाथ जोड़ पायेंगे। कपटी का कोई दोस्त नहीं होता, समाज में भी वैर भाव मूल कारण है— सम्पत्ति में मेरा तेरा के ममत्व का होना। इससे परिवार टूटते हैं। हे सज्जनो! लोभ जाता है तभी पवित्रता आती है और इस पवित्र दिन हम संकल्प लें कि हम सभी महावीर, बुद्ध, राम और कृष्ण के आदर्शों को जीवन में अपनायेंगे। हे भव्य जीवों! अरिहंत बनो, अरिहंत नहीं बन सकते तो संत बनो, यदि संत भी नहीं बन सकते तो संतोषी सद गृहस्थ अवश्य बनो।

## 31

### जैन धर्म कठोर साधना का पर्याय

गुरुचरणों में मनाया गया विश्व मैत्री पर्व : विविध धर्माचार्य सन्मति समवशरण में एक मंच पर

क्षमावाणी पर्व के पावन प्रसंग— विश्व मैत्री दिवस पर सन्मति समवशरण में विविध धर्मों के धर्माचार्यों की उपस्थिति एवं उनके उद्गारों से गुजरात की राजधानी गांधीनगर सन्मति समवशरण, सेक्टर-21 में अद्भुत ऐतिहासिक दृश्य व मैत्रीयता का सुरम्य वातावरण उत्पन्न हुआ।

स्वामीनारायण सम्प्रदाय से पधारे स्वामीजी ने जैन मुनियों की कठोर साधना वृत्ति की आन-बान और शान कहा कि जिनके पैरों में जूता नहीं, सिर पर बाना नहीं, बैंक में खाता नहीं, परिवार से नाता नहीं उसे कहते हैं, जैन मुनि। जैन मुनि कठिन साधना करते हैं, जैसा भोजन मिल जाए वैसा शुद्ध भोजन एक बार ही व्रत, संयम आदि को धारण करते हुए करते हैं।

सिखधर्म के ज्ञानी रमणदीप सिंह ने कहा कि परमात्मा एक है इसे समझकर सभी को साथ में रहना चाहिए परम उपकारी गुरु और परमेश्वर को सच्चे मन से याद करते हुए उनके द्वारा बताए प्रेम व सच्चाई के मार्ग पर चलकर इस नश्वर को सफल बनाना चाहिए जो हमें चौरासी लाख योनियों में भ्रमण के पश्चात् मिला है।

ब्रह्माकुमारी राजयोगिनी तारा दीदी ने आचार्य गुरुदेव की कठिन तपस्चर्या को व्यक्ति, समाज व देश के लिए प्रेरणादायी बताया और कहा कि यह आदर्श गीता के 18वें अध्याय में बताए गए नष्टमोह की ओर ले जाता है। आचार्य भगवन् ने अपने संघस्थ अनेक तपस्वी मुनियों व आर्थिकाओं का जीवन तो सुधारा ही है, इसके साथ साथ गृहस्थों पर भी मैत्री व आत्मकल्याण का मार्ग बताकर बहुत बड़ा उपकार किया है तथा इस कठोर साधना के द्वारा, वैराग्य के द्वारा अपनी आत्मा के गुणों को प्रकट किया है, शरीर और आत्मा का भेद विज्ञान प्रकट किया है। आज व्यक्ति मंदिर में जाने से पूर्व चमड़े की बैल्ट आदि उतार कर तो जाता है किन्तु अहंकार व अभिमान रूपी चमड़े को, देहाभिमान को अन्दर जाने पर भी अपने से अलग नहीं कर पाता है यही दुख का मूल है। इससे बचने के लिए ज्ञान व शांति के सागर त्रिलोकीनाथ का चिन्तन करो। गुरु और परमेश्वर की कृपा के बिना उद्धार नहीं है।

वात्सल्य मूर्ति आचार्य गुरुवर श्री सुनीलसागरजी महाराज ने अपना उद्बोधन शुरु करते हुए कहा कि—

**क्षमा करे और क्षमा मांग लें, जीत हैं इसमें हार नहीं।**

**क्षमा वीर का अभूषण है, कायर का श्रंगार नहीं।।**

क्षमा सबसे बड़ा धर्म है। अपने अपराध के लिए दूसरों से क्षमा मांगना तो ठीक है किन्तु गलती न होने पर भी दूसरों से क्षमा मांग लेना महानता है। इसी प्रकार दूसरों की गलतियों को हृदय से क्षमा कर देने पर मैत्री व प्रेम प्रकट होता है जो सही मायनों में विश्व मैत्री दिवस की प्रासंगिकता और गरिमा को बढ़ा देता है। हमारा गुरुर ही इस प्रक्रिया में आड़े आता है जो सांसारिक शांति को छिन्न-भिन्न कर देता है और अंतरंग की निर्मलता को भी समाप्त कर डालता है।

महापुरुषों का जीवन क्षमा शांति और करुणा से भरा हुआ होता है। परमशक्तिशाली होते हुए भी श्रीराम ने अपनी गलती न होते हुए भी युद्ध में मरणासन्न रावण से क्षमा मांगी थी। महाभारत के केन्द्रबिन्दु योगेश्वर श्रीकृष्ण ने

भी क्षमाभाव धारण करते हुए युद्ध रोकने की अंतिम क्षण तक कोशिश की थी। भगवान् महावीर पर चंड कौशिक सर्प ने विष दंत से हमला किया किन्तु क्षमायोगी प्रभु के शरीर से रक्त की जगह दूध की धार बह निकली। आचार्य भगवन् ने अपने साधु जीवन की घटना का जिक्र करते हुए कहा कि उनके संघ पर राजस्थान में विहार करते हुए मधुमक्खियों ने भयंकर हमला किया किन्तु उनका जहर भी कुछ भी नहीं बिगाड़ सका, कुछ समय पश्चात् ही वे सभी स्वस्थ हो गए। यह है क्षमा करुणा व दया भाव को हृदय में धारण करने की महिमा। इतिहास कर्नाटक राज्य वल्लाल देव और राजस्थान की मीराबाई आदि कई महान् उदाहरणों से भरा पड़ा है जहाँ भक्ति भावना के आगे हलाहल विष भी उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका।

आचार्यश्री ने वर्तमान चर्चित मुद्दे पर टिप्पणी करते हुए कहा कि अभी हाल में न्याय व्यवस्था ने व्यभिचार को सही मानते हुए अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया है और इससे पूर्व भी संलैंगिकता और लिंव-इन-रिलेशनशिप को जायज करार दिया इस पर तीखी टिप्पणी करते हुए आचार्यश्री ने कहा कि ये निर्णायक कतिपय भारतीय संस्कृति, उसके घटक एवं उसकी महान् मर्यादा को भूल गए कि श्रीराम ने रावण का वध मात्र सीता के लिए नहीं अपितु मर्यादा की रक्षा के लिए किया था। ऐसा अदालती निर्णय देश के चरित्र के लिए घातक सिद्ध होगा। साधना और मर्यादा के आदर्श के बिना हमारी संस्कृति की कोई कीमत नहीं। भारत विश्व गुरु ज्ञान के कारण ही नहीं अपितु साधकों के आचार और विचार दोनों के अद्भुत समन्वय के कारण है। हमारे यहाँ तो दान, आत्मीयता, मैत्री व शील की संस्कृति की आदर्श व उत्तम परंपरा रही है जिसे अपने व्यवहार में बनाए रखना ही हमारा परम कर्तव्य है।

परमात्मा एक है भले ही उसे आदि ब्रह्मा कहें, महादेव कहें या अन्य किसी दृष्टि से पुकारें वह सिद्ध स्वरूप ही है। हर आत्मा उनके बताये रास्ते पर चलकर सिद्ध स्वरूप को उपलब्ध हो सकती है। किन्तु जो रास्ता जितना सीधा, सच्चा और सरल होता है वह रास्ता मंजिल तक उतना ही पहले पहुँचा सकता है। अनेकांत की दृष्टि से जीव के अनेकानेक भूमिकाओं के अनुसार विविध स्वरूप प्रकट हो सकते हैं किन्तु मूल स्वरूप तो एक ही है। प्रभु स्वरूप को पाने के लिए हमें मद, अहंकार से बाहर निकलना होगा। हम अपने जीवन में मैल न रखें, किसी से वैरभाव न करें क्योंकि यह जन्मान्तर में भ्रमण करना पड़ता है।

विश्व मैत्री दिवस की पावन प्रातःकालीन बेला में श्री रामकृष्ण स्वामी, सेक्टर-23 गुरुकुल के ट्रस्टी, सेक्टर-30 गुरुद्वारा के ज्ञानी रमणदीप सिंह, वैजनाथ महादेव धाम, वासनिया के स्वामी ललितानन्दन महाराज, राजयोगिनी ब्रह्मकुमारी तारा दीदी, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम कोबा के श्रीअरुण बाई बगडिया, तथा अक्षय पात्र एन.जी.ओ. गांधीनगर के ट्रस्टी श्री मुकेशभाई त्रिवेदी आदि उपस्थित हुए। सभी महानुभावों ने एकमत से आचार्यश्री की इस पहल का

स्वागत किया और कहा कि इससे समाज में मैत्रीयता का वातावरण और अधिक पुष्पित पल्लवित होगा। जैन धर्म को यह योगदान आचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज की यह पहल प्रसंशनीय व अनुकरणीय है।

## 32

### धर्ममय राजनीतिज्ञ जीव दया के कार्य को आगे ले जा सकते हैं

राष्ट्र गौरव आचार्यसुनील सागरजी ससंघ पधारने से पावन हुई गुजरात की धरा : मुख्यमंत्री श्री विजयभाई रूपाणी।

**प्यासों के प्राणों की प्यास बुझा दे उसे पानी कहते हैं।  
जो राजनीति में रहकर धर्मनीति व दया अनुसरे, उसे विजय रूपाणी कहते हैं।**

गुजरात की राजधानी में राष्ट्र गौरव प्राकृताचार्य चतुर्थ पट्टाधीश आचार्य श्री सुनील सागरजी महाराज के सानिध्य में भव्य मानस्तंभ प्रतिष्ठा महोत्सव चल रहा है। आज जन्मकल्याण का दिन विशेष था। हमारे राज्य के सरलस्वभावी मुख्यमंत्री श्री विजयभाई रूपाणी वीर प्रभु के दर्शन करते हुए आचार्यश्री का आशीर्वाद लेने हेतु सन्मति समवशरण में पधारे। उन्होंने गुरुदेव को श्रद्धा से वंदन करते हुए कहा कि गुजरात की धरती पर परमपूज्य आचार्य भगवान का समग्र राज्य की जनता की ओर से बहुत स्वागत है। आचार्य भगवन् ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि यदि सभी राज्यों को ऐसा धर्ममय राजनीतिज्ञ मिल जाय तो जीव दया कार्य सर्वत्र किया जा सकता है।

कठिन तपस्वी दिगंबर जैन संत आचार्य सुनील सागरजी ने गुजरात की धरा को किया धर्मोपदेश से पावन।

यहाँ की जनता को चातुर्मास दरम्यान आपके उपदेशों का लाभ मिला है, संस्कारों का सिंचन हुआ है। वास्तव में जैन संतो की तपस्या बहुत कठिन है वे सत्य, अहिंसा, अवीर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के सिद्धांतों का पालन करते हैं, और इन आदर्शों को समाज में रखकर, समाज को अणुव्रती के रूप में इस मार्ग पर चलने की प्रेरणा देकर राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं का स्थायी समाधान दे रहे हैं।

शरीर और आत्मा के भेदविज्ञान को जानकर ये परम उपकारी संत व्यक्ति से समष्टि के हितों की कल्पना को साकार करने में अनवरत लगे हुए हैं। व्यक्ति से समष्टि का विचार करते हैं तो समस्त प्राणी में समान आत्मा का विचार आता ही है। इसीलिए राज्य में जीवदया के कई कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। "लेना नहीं अपितु देने के भाव का विचार" तो अपरिग्रह से ही

तो निकला है। व्यक्ति इस पथ पर चलते हुए व्यक्ति मोक्षमार्ग पर बढ़ता है। इसलिए धर्म अर्थ काम और मोक्ष में अंतिम मोक्ष को साररूप बताया गया है। हम सभी विशाल मन करके रहें, गरीबों और जरूरतमंदों के लिए अपने द्वार खुले रखें यही धर्म है। भारत में कोई भूखा या गरीब ना रहे, मुसीबत के समय सभी साथ रहें हमें ऐसा भारत चाहिए।

जैन समुदाय में त्याग-तपस्या की परंपरा सदियों से है। इस संघ में सभी दीक्षित संत शिक्षित हैं और वे आत्म कल्याण के मार्ग पर चल रहे हैं। गुजरात की धरती के प्रभावक संत हेमचंद्राचार्य ने जैन व्याकरण दिया। सिद्धराज के राज्य में राजदंड के ऊपर धर्मदंड था। राज्य धर्म की आचारसंहिता इसी रूप में प्रस्थापित है। भारत में 55 प्रतिशत से ज्यादा युवाशक्ति है। साधुसंत इनके कल्याण की सतत चिंता करते हैं।

हम धर्म के अर्थ को जानते हैं। प्रेम व दया के साथ मानवता निखर उठती है। दया, करुणा, प्रेम का भाव रखकर तथा मोह-माया वासना आदि का त्याग हो तब आत्मा मोक्ष मार्ग पर बढ़ता है। आगामी वर्षों में भारतमाता ही जगत जननी शक्तिस्वरूपा के रूप में विश्व का मार्गदर्शन करेगी। गुजरात में जीवदया के महेनजर कांदला से जीवित पशुओं का निर्यात बंद करा दिया गया। इसे उपस्थित जनसमुदाय ने खूब खूब सराहा। आचार्यश्री सुनील सागरजी महाराज ने कहा कि -

**इंसानियत दिल में होती है, तिजोरी में नहीं।**

**ऊपर वाला आपके कर्म को देखता है, आपकी वसीयत नहीं।**

इतिहास गवाह है कि भगवान महावीर की वाणी को कई महान लोगों ने स्वीकार किया है और रूपाणीजी ने राजकर्म को जीवदया उन्मुखी बनाकर मुखमोड़ कर मानवीयता का महान कार्य किया है। मानव के लिए आयुष्मान जैसी योजना तो पशुओं के लिए भी 108 जैसी आरोग्य मदद सेवा शुरु की है। प्रधानमंत्री नरेन्द्रभाई मोदी व्रत संकल्पों के पालन की जीती जागती प्रेरणास्पद मिशाल हैं जिन्होंने विदेश प्रवास के दौरान भी इस परंपरा को जीवंत रखा।

**“परस्परपग्रहो जीवानाम”** शांतिपूर्ण समृद्ध समाज व्यवस्था का मूलमंत्र

सबका साथ सबका विकास की बात कहकर आप जैन धर्म के मूलमंत्र परस्परपग्रहो जीवानाम को चरितार्थ कर रहे हैं। राजा का जनता के साथ सीधा सम्पर्क अनिवार्य है, नहीं तो स्थापित माध्यमों से होकर जनता की आवाज स्थिति ठीक वैसी हो जाती है जैसे एक बर्फ का गोला कई पदाधिकारियों के बीच से गुजरकर वापस राजा के पास पहुँचते पहुँचते चंद बूंद मात्र रह जाता है। चाणक्य प्रस्थापित चन्द्रगुप्त की अर्थव्यवस्था का प्रतीक चिह्न जैन गुरुओं का कमंडल था जो यह संदेश देता है कि अर्थव्यवस्था ऐसी

हो जिसमें आय ज्यादा रहे और खर्च कम। कर्ज पर जिंदगी न चले। पिच्छी व कमंडल जैन संतों के संयम के उपकरण हैं जो जीवदया के साथ संयममय जीवन जीने का परिग्रह को कम करने का मूक किन्तु प्रभावक उपदेश देते हैं।

### 33

## खुशी के समय होश और मुसीबत के समय जोश न खोएं

आचार्य भगवन् कहते हैं कि हमें सब्जी बेचने वाले जैसे छोटे व्यापारियों से सौदेबाजी नहीं करें उन पर करुणा और दया का भाव रखें। यदि खुशी के समय होश गँवा दिया तो कदम भटक सकते हैं और यदि मुसीबत के समय जोश कम हो गया तो परेशानी और बढ़ सकती है। इसलिए विवेक बनाए रखें।

**काँच व पत्थर साथ रहे, कोई बात नहीं घबराने की।  
बस इतना याद रहे, कि जिद ना हो टकराने की।।**

### प्राकृत भाषा के विकास हेतु बने संस्थान

गिरनार में भी सभी को अहिंसा व प्रेम के साथ दर्शन हों ऐसी व्यवस्थाएं बने। गुरुदेव ने एक माह गिरनार में रहकर साधना की। जैन समाज कट्टरता से बंधा हुआ नहीं है वह करुणा के अभियान का सहचर है। उन्होंने कहा कि प्राकृत संस्कृत की बहन है, माँ है। कालीदास आदि की कई रचनाएं, नाटक आदि प्राकृत में हैं। सरकार किसानों को सहयोग करती अच्छी बात है लेकिन वह हिंसक आजीविका हेतु सब्सीडी (अनुदान) देना बंद करे ताकि जीव दया की भावना को समृद्ध किया जा सके। यहाँ किसी की आजीविका छीनने की बात नहीं अपितु आजीविका हेतु पोषणक्षम अहिंसक विकल्प खड़े करने की बात है। आज रूपाणी भाई जैसे लोग शीर्ष पर पहुँचे तो यह मानवता का अभियान और गति पकड़ सकता है।

### पिच्छी परिवर्तन मुख्यमंत्री के हाथों

पिच्छी अहिंसा का उपकरण है इसके द्वारा मुनिजन शरीर का स्थान व वस्तु आदि का मार्जन करते हैं ताकि सूक्ष्म जीवों का भी घात न हो। परम पूज्य गुरुदेव को श्रद्धा से पिच्छी भेंट करते हुए माननीय मुख्यमंत्री श्री विजय भाई ने खूब धर्म लाभ लिया। पिच्छी की कोमलता व्यवहार को मुलायम बनाने का संदेश देती है भोगों से विरक्ति का संदेश देती है। कमंडल बाहर से भले ही कठोर हो लेकिन उसके अंदर मृदु पानी भरा होता है जिसका वे मितव्ययतापूर्वक उपयोग करते हैं। मुनिवरो के ये उपकरण सद्ग्रहस्थों को भी

अणुव्रत के कल्याणकारी पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। सभी मुनि, साधु माताजी आदि की पिच्छी लेने व प्रदान करने का सौभाग्य अणुव्रत धारण करने वाले सौभाग्यशाली श्रावकों को मिला।

### अंकलीकर पुरस्कारों का वितरण

तपस्वी सम्राट सन्मतिसागरजी के मार्गदर्शन में गठित आचार्य आदिसागर अन्तर्राष्ट्रीय मंच द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में अतुलनीय कार्य करने वालों को हर वर्ष सम्मान दिया जाता है। इस वर्ष के पुरस्कार गुरुदेव आचार्य सुनीलसागरजी महाराज के सानिध्य में मुख्यमंत्री के हाथों प्रदान किए गए। जैन साहित्य में उत्कृष्ट लेखन के लिए आचार्य आदिसागर अंकलीकर विद्वत् पुरस्कार अहमदाबाद के पं. मधुसूदन शाह को दिया गया। समाज सेवा में उत्कृष्ट कार्य करने हेतु आचार्य महावीरकीर्ति समाजसेवा राजनयिक पुरस्कार गांधीनगर के पूर्व मेयर श्री गौतमभाई शाह को दिया गया। जिसके पुण्यार्जक श्री सुमेरमल अजयकुमार चूडीवाल थे। श्रीमती सी.पी. कुसमा प्रकाश बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ को प्राकृत भाषा में अप्रतिम योगदान करने के लिए आचार्य श्री विमलसागर शोध एवं अनुसंधान पुरस्कार प्रदान किया गया। इसकी पुण्यार्जक श्रीमती सज्जनदेवी ज्ञानचंद मिण्डा थीं जिनकी एकदिवस पूर्व क्षुल्लक दीक्षा हुई है। पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट सेवा प्रदान करने के लिए तपस्वी सम्राट सन्मतिसागर पुरस्कार जिनेन्दु एवं यंगलीडर समाचार पत्र के संपादक एवं संचालक श्रीमती नीलम जैन एवं श्री धर्मेन्द्र जैन अहमदाबाद को प्रदान किया गया जिसके पुण्यार्जक श्री कमलकुमार शांतिलाल जी थे। गणिनी आर्यिका श्री विजयमती त्यागी सेवा पुरस्कार पं. वाणसेन जैन ऋषभदेव को दिया गया। जिसके पुण्यार्जक रिखभचंद अजितकुमार कासलीवाल जी हैं।

## 34

### हर व्यक्ति के जीवन का प्रथम शिक्षक है माँ

आचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज की राष्ट्र व्यापी देशना वैश्विक अहिंसा, जीवदया व करुणा की चिंता को देखते हुए उनके सार्वत्रिक योगदान के लिए उन्हें माननीय मुख्यमंत्री श्री विजयभाई रूपानी ने राष्ट्र गौरव का सम्मान प्रदान किया। दिगंबर संत तो समता की जीती जागती मिशाल हैं उन पर सम्मान, आलोचना, मित्रता, शत्रुता, राग-द्वेष आदि का कोई प्रभाव नहीं होता। उनके सरल स्वाभाव के लिए कहा जाता है—

अरि, मित्र, महल, मसान, कंचन, कांच निंदन थुति करन।  
अरघावतारन असि प्रहारन, में सदा समता धरन।

निर्ग्रन्थ गुरु के लिए महल, श्मशान, शत्रु, मित्र, प्रहार करने वाला पूजा अर्चना करने वाला सभी समान होते हैं वे सभी के साथ सम्यक् व्यवहार करते हैं। हम श्रावक उनके परम उपकार को भुला नहीं सकते। इसलिए भक्ति से प्रेरित होकर यह राष्ट्र गौरव का पुरस्कार गुरु चरणों में समर्पित कर रहे हैं। इससे यह सम्मान भी शीर्ष तक पहुँच गया और पाने वाले की महानता के आगे नतमस्तक होकर धन्यता का अनुभव कर रहा है।

### माता है महिमामय

भगवान के जन्म कल्याणक के अवसर पर गुरुदेव माता की महिमा को बता रहे थे कि तीर्थंकर प्रभु के दर्शन का प्रथम सौभाग्य सर्व प्रथम तीर्थंकर की माता को ही मिलता है। इन्द्रों में यह सौभाग्य सौधर्म इन्द्र की इन्द्राणी शची देवी को ही मिलता है। माता ही वह प्रथम शिक्षक है जो बच्चे को संस्कारित करती है और उसके जीवन को आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसित करती है। इसीलिए सभी धर्मों में मातृशक्ति को अग्रणी स्थान प्राप्त है। विद्या की देवी सरस्वती को जो स्थान प्राप्त है, जो श्री की अधिष्ठात्री लक्ष्मी को प्राप्त है वह देवताओं को भी प्राप्त नहीं। लेकिन आज यह मातृशक्ति, महिला शक्ति अपनी गरिमा को भूलकर गलत आचरण करके अपनी पावन छवि को बड़ा लगा रही है।

महामुनिराज मानतुंगाचार्य ने भी माता की महिमा का गुणगान भक्तामर स्त्रोत्र में किया है। **स्त्रीणां शतानि सतशो जनयन्ति पुत्रान.....**। अर्थात् तीर्थंकर जैसे सुत को जन्म देने वाली माता लाखों करोड़ों में एक ही होती है। तीर्थंकर जैसा एक सुत ही सौ के बराबर होता है।

### तीर्थंकर आदिनाथ भगवान की नजर में लड़का-लड़की समान थे

प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान ने कभी लड़का लड़की में भेद नहीं किया उन्होंने अपने पुत्रों को शिक्षित किया शासन व्यवस्था में निपुण किया तो अपनी पुत्री ब्राह्मी को ब्राह्मी लिपि का ज्ञान दिया जो दुनियाँ की प्राचीनतम लिपि है। गुरुदेव ने मुख्यमंत्री महोदय को भी कहा "माना कि आज के जमाने में यह लिपि प्रचलन में नहीं है लेकिन हमें अपनी संस्कृति रक्षार्थ इसके प्रसार हेतु ईमानदारी पूर्ण प्रयास करते रहने चाहिए। उनकी दूसरी पुत्री सुन्दरी को अंकविद्या गणित का ज्ञान दिया। शून्य का आविष्कार करने वाले आदि प्रभु ही थे हमें अपनी समृद्ध संस्कृति पर गर्व होना चाहिए। हम अपने आचरण पर ध्यान देकर प्रभु महावीर की शिक्षाओं के अनुरूप जीवन को ढालकर, खोटे विचारों से दूर रहकर सम्यक्त्व के पथ पर जा सकते हैं और इसी सम्यक् पुरुषार्थ के द्वारा प्रभु महावीर की तरह मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

## बच्चों को गलत तरीके से न डराए

अज्ञानतावश हमारे समाज में चलन है “गलत तरीके से आभासी भय दिखाकर बच्चों को डराने”। वस्तुतः इससे बच्चे का आत्मविश्वास टूटता है, वह झूठ बोलना सीखता है, चोरी करना, गलती छिपाना भी सीख जाता है जो बाद में अपराधवृत्ति का रूप ले लेता है। उनको सिखाओ अंधेरे से डरने की कोई जरूरत नहीं है, मुसीबत का हिम्मत व साहस से सामना करना सीखो। माताएं अपने बच्चों को वीर बना सकती हैं।

## परिवार टूटते हैं मुखिया को सम्मान न देने से

आज एकल परिवार व्यवस्था का चलन जोरों पर है। मुखिया का कोई सम्मान नहीं रह गया है। बंधुओं! जिस घर में मुखिया का सम्मान नहीं होता वह बिखर जाता है। अहम् टकराने से परिवार टूटते हैं हमें इससे बचना है तथा मैत्री व प्रेम की व्यवस्था को आगे ले जाना है। बच्चों को अपने माँ बाप को पलटकर जवाब देने से पहले एक बार नहीं सौ बार सोचना चाहिए, गुरुओं का भी आदर करना चाहिए क्योंकि वे ही हमारे परम हितेषी हैं। माता-पिता-गुरु को सबसे अधिक तकलीफ़ तब होती है जब उनका बेटा, शिष्य उनसे जबान लड़ाता है। प्रभु महावीर इतने आज्ञाकारी और सुविज्ञ पुत्र थे कि उनकी माता ने जो 16 सपने देखे थे उन्होंने अपने आचरण से उन्हें सच करके दिखा दिया। हमें भी अपने बड़ों का कृतज्ञ होना चाहिए उनका जीवन पर अहसान मानना चाहिए।

## अँधेरे को कैसे हटाएँ?—

अँधेरे में आए, अँधेरे में ही चले गए। उजाले में आए किन्तु अँधेरे में गए।।

अँधेरे में आए, उजाले में गए। उजाले में आए और उजाले में ही गए।।

गुरुदेव ने 4 प्रकार के लोगों की प्रकृति जिक्र करते हुए कहा कि प्रथम कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनको जन्म से सम्यक्त्व रूपी उजाले का समागम नहीं मिला, पुरुषार्थ से भी उसका उपार्जन नहीं किया, जीवन में ऐसी संगत भी नहीं मिली और वे अज्ञान के अँधेरे में ही इस दुनियाँ से विदा हो गए, वे महा दुर्भाग्यशाली हैं। दूसरे वे दुर्भाग्यशाली लोग हैं जो अच्छे कुल में पैदा तो हुए किन्तु जीवन में सम्यक् बोध एवं सम्यक् आचरण नहीं कर पाए। तथा तीसरे वे सौभाग्यशाली जीव हैं जिन्होंने जन्म तो सम्यक्त्व के वातावरण में नहीं लिया किन्तु सुयोग पाकर समुचित पुरुषार्थ करके सम्यक्त्व के उजाले से जो अपने जीवन को धन्य कर गए। और वे अति सौभाग्यशाली जीव हैं जिनको जन्म से सम्यक्त्व का सान्निध्य मिला, जीवनभर तदनुरूप पुरुषार्थ भी किया तथा अंत में समाधिमरण के द्वारा जीवन को सफल बना गए। भगवान महावीर ऐसी ही पवित्र आत्मा थे जो उजाले में आए और जिदगीभर उजाले में

रहे तथा दुनियाँ को अपने उजाले से रोशन करते रहे एवं अंत में पुरुषार्थ के द्वारा केवलज्ञानरूपी उजाले के साथ मोक्ष लक्ष्मी का वरण कर गए।

### 35

## मानवजन्म रूपी पारसमणि को पाकर सम्यक् पुरुषार्थ के द्वारा थोड़े ही भवों में होवें भव पार

मैं कौन हूँ, आया कहाँ से, और मेरा रूप क्या ?  
संबंध दुःखमय कौन है, स्वीकृत करने परिहार क्या ?  
उसका विचार विवेक पूर्वक, शांत चित्त से कीजिए।  
तो सर्व आत्मिक सौख्य के, आनंद का रस लीजिए ॥

परमपूज्य गुरुवर चतुर्थ पट्टाचार्य आचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज ने भव पार करने वाली, मानव जन्मरूपी पारस देह से सम्यक् पुरुषार्थ कर जीवन को सफल बनाने वाली कुंजी सुझा श्रावकगणों को देते हुए संबोधित किया कि हमें सतत जागृत रहते हुए स्व का, निज आत्मस्वरूप का चिंतन—मनन तथा तदनुरूप आचरण करना चाहिए। तभी जीवन की सार्थकता है।

आत्मारथी सज्जनो! पद्मनंदी पंचविंशतिका में पंडित आशाधरजी ने उल्लेख किया है कि प्रत्येक परमात्मा जीव को यह विचार निरंतर करना चाहिए कि मैं कौन हूँ? कहाँ से आया? मेरा सच्चा स्वरूप क्या? कौन से संबंध स्वीकारने योग्य तथा कौन से संबंध त्यागने योग्य हैं? कौन से संबंध हैं जो दुःख के कारक हैं? बंधुओ! इसका विचार कर ज्ञानी जीव आत्मिक तत्त्व के सुख का आनंद लेता है।

समयसार कलश में पूर्वाचार्य श्री अमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि हे ज्ञानी? कैसे भी कर, एक बार तत्त्व के कोतुहली बन जा, ज्ञानपिपासु बन जा। यह जिन मंदिर, जिन मूर्ति बनाने का, स्थापना करने का, प्रभु दर्शन का आदि का उद्देश्य एक ही है कि प्रभु परमात्मा के दर्शन से हम जिन दर्शन कर लें। बाहर के भगवान तो पर भगवान हैं किन्तु निज—भगवान तो अपने भीतर ही बसे हुए हैं उसकी शोध में, उसके आनंद में स्वयं को रमाओ, उसके साथ ओतप्रोत हो जाओ और फिर कोई भेद नहीं रह जाए ध्यान, ध्याता और ध्येय में।

ज्ञानिओ! आत्म स्वरूप की उपलब्धि में प्रभु और गुरु के वचन निमित्त बनते हैं। जिनालय वह आश्रम स्थान है, प्रतीक्षा स्थान है कि जब तक हमें मोक्ष, सिद्धालय, खरा खरा मोक्ष का मार्ग नहीं मिलता है तब

तक हमें इसी प्रतीक्षागृह में रहना होगा। गुरुजनों गुणीजनों ने बिल्कुल सही संबोधन किया है—

**“लाख बात की बात यह निश्चय उर लाओ,  
तो रि सकल जग द्वंदफंद निज आत्म ध्याओ।।”**

हे भव्य जीवो! थोड़ी सी सरल दृष्टि भी करो। व्यवहार दृष्टि तो संसार दृष्टि है, इसलिए यथायोग्य व्यवहार करो। उतना ही व्यवहार ठीक है जो निश्चय की ओर ले जाय। हम अंधेरी कोठरी से आए हुए जीव हैं। कौन पुण्य से निगोद से निकल कर यहाँ तक आ गए। चौदह राजु यात्रा में से तो सात राजु की आधी यात्रा तक की तो हो गई। अब थोड़ी सावधानी से आधा रास्ता और तय कर लो। यहाँ से सिद्धालय तक बहुत आसानी से पहुँच सकते हैं। मेरा निजधन निज में परिपूर्ण है। क्या ठीक कहा है कि “तेरा साईं तुझमें है, ज्यों पहुँपन में वास”। मन को चित्त को परिणामों को ऐसा बनाओ और अपने कल्याणकारी परमात्मा के प्रति भक्तिभाव से समर्पित हो जाओ। गुजराती भजन की बहुत ही सुन्दर पक्तियाँ हैं—

**“मुक्ति मले के ना मले मने सेवा तमारी करवी छे,  
मेवा मले के ना मले मने सेवा तमारी करवी छे।”**

युवाओ! आत्मदृष्टि पैदा करो। पर्यायदृष्टि करोगे तो पामर बन जाओगे और परमात्मा दृष्टि करोगे तो परमात्मा बन जाओगे। एक बार एक हजामत बनाने वाले नाई को गुरु ने दया करके उसे पारस दिया। उस हजामतवाले ने उस पारस मणि से अपनी लोहे की खुर्पी, बेंच, उस्तरा, कैंची, पानी की कटोरी आदि सारी की सारी लोहे की वस्तुओं को स्वर्ण का बना दिया। दुकान में सारी की सारी चीजें सोने की हो गईं तो उसका धंधा भी जोरों से होने लगा। किन्तु उसे कभी यह नहीं सूझा कि सारी लोहे की वस्तुओं को जो स्वर्ण की हो गई थी उसे बेचकर कुछ अच्छा व्यापार शुरू करे। वह पैसा इकट्ठा कर धनवान बन सकता था किन्तु! उसका दुर्भाग्य...। कुछ समय बाद वही गुरुजी पुनः उस गांव में पधारे पर वह भक्त गुरु के दर्शन को नहीं गया, गुरु ने उसे बुलाया, तब वह उनके दर्शनार्थ वहाँ पहुँचा। उसको समझाते हुए गुरु महाराज ने कहा कि हे ज्ञानी जीव! समझो! सौभाग्य से हमें जिनधर्म रूपी पारसमणि मिल गई है, उस हजामतवाले की तरह दुर्भाग्य अगर हम विषय-कषायों के पीछे ही लगे रहे तो हाथ मलते ही रह जायेंगे। इसलिए अब ऐसा पुरुषार्थ करो कि मनुष्य भव पाया है तो सम्यक् पुरुषार्थ करके थोड़े ही भव में भव के पार हो जाओ।

## 36

## गुरुचरणों में समर्पण तथा सकारात्मक विचारों से संवरता है जीवन

हे! जैन धर्म तेरी सदा विजय हो।  
तेरे विशाल हृदय में आत्म सूर्य का उदय हो।।

जैन समुदाय का पवित्र तीर्थ सम्मेलन शिखर खतरे में है, जैनैतर समुदाय उस पहाड़ी पर अनाधिकृत कब्जा करने का प्रयास कर रहा है जहाँ से 20 तार्थकर एवं असंख्यात मुनि मोक्ष पधारे हैं। समाज के अग्रजनों की सीधी पहल से सरकार आश्वासन तो दे रही है लेकिन उसकी नीतियाँ साफ नहीं दिख रही है। परमपूज्य गुरुदेव आचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज ने कहा कि समस्त जैनों का कर्तव्य है कि वे तीर्थक्षेत्रों की रक्षा के लिए जागृत बने और बेहतर तो ये होगा कि वे किसी भी सिद्धक्षेत्र आदि पर यात्रा के दौरान खाने-पीने की कोई वस्तु ना खरीदे और ना उपयोग करें ताकि ऐसे लोगों को वहाँ पर किसी भी प्रकार से हक जताने का अवसर ही न मिले।

आज के प्रासंगिक उद्बोधन में परम कृपालु आचार्य भगवन् ने कहा कि जीवन में आत्मविश्वास का होना बहुत जरूरी है। व्यक्ति तब बूढ़ा महसूस नहीं करता जब वह उम्र से बूढ़ा हो जाता है अपितु उस समय बूढ़ा हो जाता है जब उसका आत्म विश्वास मर जाता है। यह आत्मविश्वास पैदा किया जा सकता है पूर्ण समर्पण से, सकारात्मक सोच से। हे आत्मार्थी बंधुओ! जीवन में कभी हताश न हों आत्मविश्वास न टूटे उसके लिए आज सबसे अधिक जरूरी है— परिवार के बुजुर्गों का Strong Motivation और परिवार के सदस्यों का Strong Dedication दोनों ही पक्षों को अपनी भूमिका व कर्तव्यों को भलीभांति समझना

होगा तथा ईमानदारी व प्रेम से उनका निर्वाह करना होगा।

बूढ़ जब सागर को समर्पित होती है, तब मोती बनती है।  
माटी जब कुम्हार को समर्पित होती है, तब गागर बनती है।।

शैतान जब भगवान को समर्पित होता है, तब इंसान बनता है।  
इंसान जब गुरु को समर्पित होता है, तब पतित से पावन बनता है।

गुरु चरणों में, प्रभु के चरणों में इंसान जितना नीचे तक जाता है, विनम्र बनता है उतना ही जीवन में ऊपर उठता है। बेहतर जीवन के लिए गहन चिंतन, कठोर परिश्रम, आन्तरिक उत्साह, सकारात्मक सोच एवं अभिप्रेरक वातावरण जरूरी है। प्रायः हम अपनी सोच के कारण ही स्वस्थ या

अस्वस्थ रहते हैं। कई बार अतिरिक्त सहानुभूति पाने के लिए भी हम स्वयं को अस्वस्थ बना लेते हैं, पराधीन बन जाते हैं, यह ठीक नहीं, अतिरिक्त अधिकार ठीक नहीं। सकारात्मक सोच से बड़ी से बड़ी कठिनाई आसानी से पार हो जाती है।

अतिरिक्त तनाव व रात्रि को देर तक जागना टेंशन का मुख्य कारण है। अपने मन पर, चित्त पर इतना प्रेशर मत दो कि वह प्रेशर कुकर बनकर फट ही जाय, जो आज कल के माता-पिता प्रायः अपनी संतानों के साथ करते हैं, अपनी अपेक्षाएं उन पर लादते हैं। युवाओं को संबोधते हुए गुरुदेव ने कहा कि घबड़ाने की जरूरत नहीं, अपने में अपनी निहित शक्तियों के प्रति विश्वास पैदा करो, सकारात्मक सोच रखो तथा तदनुरूप पुरुषार्थ भी करो क्योंकि मंजिल उन्हें ही मिलती है जो पांव बढ़ाते हैं। गुरुदेव सन्मत्तिसागरजी कहते थे कि चलोगे तो शिखर सम्मेलन का क्या, गिरनार क्या, कैलाश भी मिलेगा और नहीं चलोगे तो एक गांव में ही सड़ते रहोगे।

एक मेंढक के कथानक के माध्यम से गुरुवर ने कहा कि एक बार एक तालाब में पानी सूखकर अति अल्प रह गया। मेंढकों के मरने की नोबत आ गई। पास में भरा हुआ दूसरा तालाब भी था लेकिन कोई भी मेंढक वहाँ जाने की क्षमता के बारे में आश्वस्त नहीं था। वहाँ पास खड़े लोगों ने कहा कि ये मेंढक उस तालाब तक पहुँच ही नहीं सकते। यह सुनकर एक मेंढक के सिवाय बाकी सभी मेंढक और अधिक हताश हो गये और अपने रहे-सहे प्रयास भी छोड़ बैठे। लेकिन वह मेंढक प्रयास करता रहा और आखिर में सफल हो गया। तालाब से बाहर आने पर लोगों ने उससे पूँछा कि तुम ऐसा कैसे कर पाये? तो उसने बताया कि मैंने किसी की नहीं सुनी, मेरे कान काम नहीं करते। सच है, जो किसी की नहीं सुनते अपना आत्मविश्वास बनाए रखते हैं उनके लिए हर मंजिल आसान होती है। अपनी देह की सेवा मत करो इससे शरीर रोग का घर बनता है। जीवन में कभी हतोत्साहित मत हो, भरोसा रखो कि गुरु महाराज और भगवान सदैव हमारे साथ हैं, हम जिस क्षेत्र में हैं उसमें खरे उतरेंगे ही, आज का दिन हमारे लिए शुरुआत करने का सबसे अच्छा दिन है उसके सदुपयोग से ही विकास होगा।

परम उपकारी गुरुदेव ने वर्तमान की ज्वलन्त समस्या "साधन-संसाधनों की कमी का रोना" पर संबोधते हुए कहा कि हमें साधनों की कमी का रोना नहीं रोना चाहिए क्योंकि जिंदगी साधनों के भरोसे ही नहीं चलती। एक निवृत्त प्रोफेसर के घर उनके पूर्व छात्र मिलने के लिए आए, बहुत कुछ होने के बाद भी वे सब अपने पास में कुछ न कुछ साधनों की कमी का रोना रोने लगे। प्रोफेसर उठकर बच्चों के लिए चाय बनाकर लाए और फिर बच्चों को किचन से अपनी पसंद का कप लाने के लिए कहा। जब वे अपनी पसंद के मंहगे कप लेकर आए तो प्रोफेसर बोले चाय पियो। वे बोले, गुरुजी

चाय तो आपके पास है। फिर गुरुजी ने बच्चों को चाय दी और नसीहत भी दी कि बच्चो, जीवन इस चाय की तरह है, जो साधन संसाधनों का मोहताज नहीं, साधनों की कमी या अधिकता से इस जीवन की उपयोगिता पर कोई असर नहीं पड़ता। इसलिए हम अपने जीवन में साधन की कमी का रोना रोने बजाय संयम और साधना को जीवन में स्थान देकर सार्थकता को प्राप्त हों।

संघस्थ आर्यिका सुस्वरमती माताजी ने आत्मविश्वास को लेकर बहुत ही प्रेरणात्मक प्रवचन दिया ताकि बच्चों के माता-पिता समझें और उन पर परीक्षा का टेंशन हावी न होने दें, उनका आत्मविश्वास न टूटने दें अपितु सकारात्मक विचारों के द्वारा उन्हें सदैव प्रोत्साहित करते रहें। माता-पिता की अपेक्षाएँ प्रेशर का काम करती है जो बच्चों को जीवन के सच्चे मार्ग से भी भटका देती हैं। हम आचार्यश्री से सीख सकते हैं कि वे किस सहजता से, प्रेम से, दूसरे अच्छे विकल्प बताकर बच्चे को गलत रास्ते पर जाने से बचा लेते हैं। बंधुओ! सकारात्मकता और नकारात्मकता में थोड़ा सा ही अंतर होता है, देखें इस नजीर में— आंधी में पेड़ की डाली को पकड़े दो बच्चों की माँताओं से पहली कहती है कि—“पेड़ को जोर से पकड़ना, नहीं तो गिर जाओगे।” जबकि दूसरी कहती है कि “पेड़ को कसकर पकड़े रहोगे बच्चे, तो गिरोगे नहीं।” यहाँ पहला वाक्य नकारात्मकतापूर्ण व हताशा को बढ़ाने वाला है जबकि दूसरा सकारात्मकता से परिपूर्ण है जो विपत्ति के समय हिम्मत को बनाए रखने में मददरूप है। शब्द वही किन्तु भावना बदलने से परिणाम बदलते देर नहीं लगती। विश्वास रखो कि गुरु की शरण में आने वाला कभी अपना आत्मविश्वास नहीं खोता और हजारों गर्दिशों को पार करने का आशीर्वाद व सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। इसलिए समय रहते सद्गुरु की शरण में समर्पित हो जाओ।

## 37

### स्वस्थ समाज एवं उन्नत जीवन के लिए भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत का पालन हितकारी

चर्याचक्रवर्ती आचार्य श्री सुनील सागरजी महाराज ने श्रावकों की उत्कृष्ट चर्या हेतु अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के प्रवचन की श्रंखला में आज भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत के स्वरूप एवं उपयोगिता को समझाते हुए कहा कि जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए हमें उन वस्तुओं का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए जो उपयोग के योग्य नहीं हैं, अभक्ष्य हैं, हिंसा का कारण हैं। इसके साथ साथ उन वस्तुओं के उपयोग का भी परिमाण संकल्पबद्ध होकर करना चाहिए जो श्रावक के लिए ग्रहण करने योग्य बताई गई हैं। जीवनपर्यंत के लिए जितना परिमाण किया है उसमें से प्रतिदिन का मर्यादित परिमाण करना परिग्रह परिमाण व्रत है।

कृपालु आचार्य भगवन् कहते हैं कि दुनियाँ के समस्त भोगों को भोगने का सामर्थ्य किसी भी व्यक्ति में नहीं है फिर उसे भोगने की लालसा और आकांक्षा क्यों रखते हैं? अतिरेक निर्धारण एवं त्याग के भाव क्यों नहीं बनाते? क्यों नहीं उनसे आसक्ति घटाते? अरे भाई! अपनी जरूरत से ज्यादा उपभोग करोगे तो डॉक्टर के पास जाना पड़ेगा। विरताविरत अर्थात् देशव्रती श्रावक त्रस हिंसा से तो विरक्त होता है किन्तु वह एकेन्द्रिय स्थावर की हिंसा से बच नहीं पाता। घर, व्यापार के व्यवहार में स्थावर हिंसा होती ही है किंतु उसमें विवेक रखते हुए अनंतकायिक जीवराशि की विराधना से बचा सकता है। इसके लिए उसे कंदमूल का त्याग करना होगा, उसमें आसक्ति घटानी होगी, विदेशी व डिब्बे बंद वस्तुओं का उपयोग बंद करना होगा क्योंकि ये अभक्ष्य हैं। मक्खन (नवनीत), चीज आदि मर्यादा रहित वस्तुएं हैं इसलिए ये भी सर्वथा त्यागने योग्य हैं क्योंकि इसमें नियत समय के पश्चात् अनंत जीवराशि पैदा हो जाती है। हमें खानपान की मर्यादा को समझकर परिग्रह परिमाण करके अभक्ष्य वस्तुओं के त्याग के साथ साथ सेवनीय वस्तुओं के प्रति अनासक्ति का संयम पालना होगा। आचार्य गुरुदेव सन्मतिसागरजी ने 40 साल तक अन्न ग्रहण नहीं किया, सभी रसों का त्याग कर दिया फिर भी अभीष्ट साधना की।

गांधीजी अपने जीवन में मर्यादित रूप से वस्तुओं के उपयोग को स्वीकार करते थे। वे मानते थे कि दुनियाँ में जितने साधन-संसाधन उपलब्ध हैं वे मेरे अकेले के लिए नहीं अपितु सभी के लिए हैं। यदि सभी लोग अपनी जरूरतों को सीमित करते हुए इस परोपकारी भावना के साथ साधनों का उपयोग करेंगे तो किसी के लिए भी साधनों की कमी नहीं रहेगी। वह अक्सर कहा करते थे कि प्रकृति के पास सभी की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है किन्तु किसी एक के लालच के लिए नहीं। देशव्रती श्रावक मर्यादा के पालन के द्वारा अपने संतोष में वृद्धि करता हुआ अपने जीवन को समुन्नत बना लेता है तथा दूसरों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होता है। इस तरह से वह प्रकृति के श्रोतों—वृक्ष, नदी आदि के प्रति सही मायनों में अपना धन्यवाद अर्पित कर सकता है। मर्यादा के साथ जीवन यापन करने से आध्यात्मिक पथ पर चलने की संकल्प शक्ति में वृद्धि होती है और पाप प्रवृत्तियों से बचाव होता है। ऐसा साधक जैन धर्म में वर्णित भोगोपभोग शिक्षाव्रत के पालन में संयममय आचरण एवं भेदविज्ञान करके तथा देव-शास्त्र-गुरु के प्रति श्रद्धान दृढ़ करते हुए साधना के पथ पर निर्मल परिणामों के साथ आगे बढ़ता चला जाता है। संघस्थ वयोवृद्ध मुनिश्री सुकमाल सागरजी ने देशी रूपक के माध्यम से दुनियाँदारी और उसके जंजाल को समझाया। एक पिता अपनी पुत्री के लिए सर्वगुण सम्पन्न वर की खोज में निकला। अंततः उसे एक पात्र मिलता है, जिसका पिता कहता है कि मेरे पुत्र में 98 गुण तो हैं किन्तु मात्र 2 गुण नहीं हैं। उसने पूँछा कौन से? लड़के का पिता बोला कि एक तो वह कुछ जानता

नहीं और दूसरा वह किसी की मानता नहीं है। हे भव्य जीवो समझो कि जब ये दो मुख्य गुण पाये ही नहीं तो बाकी का क्या औचित्य?

आचार्य भगवन् ने कहा कि आज कई जगह इससे भी बदतर स्थिति है। क्योंकि कुछ लोग हैं जो जानते हैं किन्तु मानते नहीं हैं वे सम्यता के लिए खतरनाक हैं। इससे भी अधिक खतरनाक वे लोग हैं जो ना जानते हैं, ना मानते हैं फिर भी अपनी तानते हैं। गुरुदेव कहते हैं कि इन समस्याओं का समाधान विवेकपूर्ण आचरण, मर्यादापूर्ण भोगोपभोग के संकल्प को सीमित करने से हो सकता है और जीव के परिणामों की निर्मलता बढ़ सकती है। सभी इस व्रत को जीवन में अपना कर श्रेष्ठ साधना पथ के अनुगामी बनें यही मंगलकामना।

### 38

## पत्थर पर नाम लिखने वाला नहीं अपितु सेवाभावी दान ही श्रेष्ठ

पात्र को उत्तम विधि से तैयार किए गए उत्तम वस्तुओं का दान सेवा दान है महादान है। पत्थर पर नाम लिखने वाला दान नहीं अपितु सेवाभाव वाला दान ही श्रेष्ठ है। सेवादान अप्रतिम है। आहारदान, औषधि दान, अभय दान तथा विद्या का दान श्रेष्ठ माना गया है। अतिथि संविभाग नामक अंतिम शिक्षाव्रत का उपदेश देते हुए परम कृपालु गुरुदेव आचार्य सुनील सागरजी महाराज ने कहा कि एक श्रावक के लिए भी दान करना उत्कृष्ट कार्य है। यह दूसरों के प्रति दया व करुणा का प्रतीक है, इसमें परस्पर सहयोग का भाव है, इसमें सामाजिक समानता की मानवीय संवेदना है इसलिए हरेक व्यक्ति को निःस्वार्थ भाव से यथाशक्ति जरूरतमंद को, साधर्मी को, मुनिजनों को, त्यागी व्रतियों को उत्तम साधन सामग्री का दान जरूर करना चाहिए। आचार्य भगवन् कहते हैं कि सेवा का दान वस्तुओं के दान से भी उत्कृष्ट है। युवा इस क्षेत्र में आगे आएँ और जरूरतमंदों का सहारा बनें तब उन लोगों के मन में आशा की किरण चमक उठेगी जिनका कोई नहीं है।

श्रावक के लिए बताए गए आवश्यकों में अणुव्रत, गुणव्रत के अलावा शिक्षाव्रतों में अतिथि संविभाग व्रत हमारी संस्कृति, मानवीयता एवं आध्यात्मिक विकास के सोपानों से जुड़ा हुआ है। आचार्य अमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि अतिथि का मतलब है जिसके आने की कोई तिथि नहीं है और संविभाग का मतलब है अतिथि का और अपना समान भाग रखना अर्थात् स्वयं के लिए बनाए गए शुद्ध भोजन में उसका एक भाग रखना, भोजन करने बैठने से पूर्व उसकी प्रतीक्षा एवं आने का निमंत्रण देने हेतु योग्य समय पर योग्य स्थान पर पहुँचना। वह योग्य

स्थान आपका अपना घर है यदि वह दूर से दिखाई नहीं देता तो तिराहे आदि पर जा सकते हैं जहाँ पर आने वाले अतिथि की नजर आप पर पड़ सके। अतिथि के मिलने पर उसका विनम्रता से विधि पूर्वक पड़गाहन करें। ऐसे तो त्यागी साधु मुनि आदि को ही श्रेष्ठ पात्र माना गया है किन्तु भूखे-प्यासे व्यक्ति को करुणा भाव से भोजन कराना भी कम पुण्य का काम नहीं। साधु को नवधा भक्ति से आहार देना चाहिए अर्थात् आदर के साथ पड़गाहन, मन-वचन-काय शुद्धि की प्रतिबद्धता, उच्च स्थान देना, पाद प्रक्षालन, अर्चना, सिर झुकाकर नमन, फिर से मन वचन काय की शुद्धि तथा एषणा (आहार) शुद्धि, पधारे हुए अतिथि को मुदित भाव से भोजन कराना, ईर्ष्या नहीं रखना, नियत अतिथि के न आने पर मन में विषाद नहीं करना आदि को इसमें शामिल किया जाता है। दान में अहंकार का भाव कदापि नहीं होना चाहिए।

श्रावक के मूल गुणों में दया मुख्य है। एक पत्रकार को ज्ञात हुआ कि अमुक गांव में कोई भूखा नहीं सोता है। जब वह इसकी जाँच पड़ताल करने गया तो उसने पाया कि गांव में चाय की दुकान, होटल है। वहाँ एक आदमी आता है वह अकेला है किन्तु होटल वाले से दो चाय और दो प्लेट नाश्ता खरीदता है। एक प्लेट एवं एक चाय खरीदकर वह पास में जरूरतमंद के लिए बने चबूतरे पर रखकर आता है फिर वापस आकर अपना नाश्ता करता है। इतने में उस चबूतरे रखे हुए नाश्ते को एक जरूरतमंद व्यक्ति ले जाता है और अपना पेट भर लेता है। जब यह क्रम गांववालों में अनवरत चला आ रहा है तब पत्रकार ने आखिर इसका राज पूँछा। लोगों ने बताया कि हमारे गाँव की प्रथा है कि जिसके पास अपनी जरूरत से ज्यादा है वह अतिरिक्त भाग को जरूरतमंद के लिए रखकर आ जाता है इसलिए हमारे गांव में कभी कोई भूखा नहीं सोता। यदि सर्वत्र इसी तरह की पवित्र भावना व्याप्त हो जाए तो धरती ही स्वर्ग बन जाए।

आज हमारे देश में इसी प्रकार की सेवा भावना की नितान्त आवश्यकता है ताकि वृद्धाश्रमों और अनाथाश्रमों की आवश्यकता ही न पड़े। अगर ये हो भी तो हमारा सहयोग ऐसा हो कि ये उन बुजुर्गों व निरीहों का सहारा बनें जो निःसहाय हैं जिनका कोई नहीं है। वे लोग समझें जो अपने बूढ़े माँ-बाप को घर से बाहर भटकने के लिए छोड़ देते हैं शायद वो नहीं जानते कि घर के आंगन में लगा हुआ पेड़ जो फल भले ही न दे किन्तु अंत तक पीढ़ियों को शीतल छाया अवश्य देता रहेगा। कसाई तो एक बार ही किसी प्राणी के प्राण हरण करता है किन्तु माँ बाप की परवाह न करने वाले ऐसे निकृष्ट लोग तिल तिलकर उन्हें मारते रहते हैं। लोग कुत्ते को साथ रख सकते हैं किन्तु बूढ़े माँ-बाप की सेवा-सुश्रूषा नहीं कर सकते। यदि ऐसे लोग पूजा दान आदि भी करते हों तो वह भी निरर्थक है। माँ-बाप को भी चाहिए कि वे समता भाव रखें, प्राप्य में संतोष रखें। इस प्रकार जब दोनों ओर से संवेदना विकसित होगी तो इस समस्या का व्यवहारिक समाधान निकल आयेगा। वृद्धावस्था में

जीभ को संभालने की जरूरत है स्वाद से भी और वाणी से भी। स्वाद शरीर के लिए हानि कारक है और कठोर वाणी मन के विकारों को जन्म देती है तथा कषायों की पुष्टि करती है। हर हाल में खुश रहना सीखें। शांति कहीं बाहर से नहीं आयेगी अपने अंदर से ही मिलेगी जब हम दूसरों के प्रति कटुता छोड़ देंगे और मृदुता धारण कर लेंगे। हरदम विचार करो कि मेरे साथ भले ही कुछ भी हो किन्तु हम यही दुआ करें कि दूसरों के साथ अच्छा ही हो तो निश्चित रूप से आपको दुख में भी विषम परिस्थितियों में भी असीम सुख की अनुभूति होगी। स्वयं के लिए तो सभी जी लेते हैं किन्तु दूसरों के लिए भी जिऐं यही सच्चा मानव धर्म है। प्रभु महावीर ने भी कहा था कि परस्पोरपग्रहो जीवानाम्। परस्पर सहयोग ही हमारी संस्कृति है इसे हम दया और मैत्री की भावना से सींचें। सेवा ही परमो धर्म: इसलिए सेवामय रहते हुए जीवन को ऊर्जावान बनाएं तथा समाज के लिए उपयोगी बनें। सेवा भावना को हम अपने जीवन का मकसद बनाएँ।

### 39

## सुखी रहना हो तो दूसरों में कमियां नहीं, सद्गुण ढूंढ़ो

आज का मानव जिस कारण से दुखी है उन पर प्रकाश डालते हुए परम उपकारी गुरुदेव आचार्य सुनीलसागरजी महाराज ने आज प्रातः कालीन प्रवचन सभा में कहा कि यदि तुम्हें दुखी होना हो तो क्लेश करो, दूसरों की निंदा करो, उसमें बुराइयां ढूंढ़ो और नीचा दिखाने का कोई अवसर मत छोड़ो किन्तु यदि तुम सुखी रहना चाहते हो तो दूसरों के गुण शोधक बनो, प्रेमपूर्ण व्यवहार करो, हर एक परिस्थिति में सहज रहो, दूसरों के दोष ढंको।

**निज गुण अरु पर औगुण ढांके वा निज धर्म बढ़ावे....**

किसी की जय— पराजय पर सुखी—दुखी होने का विकल्प मन में मत रखो अन्यथा विपरीत परिणाम घटित होने पर दुखी ही होना पड़ता है। न किसी की जीत की कल्पना करो और न ही नाहक किसी की हार की कामना। तब किसी भी घटना के घटित होने पर आपको दुख नहीं होगा। कई बार हम सुन्दरता— असुन्दरता का विकल्प पाल कर व्यर्थ ही दुखी होते हैं। अरे! जो कायम रहने वाली वस्तु नहीं है उसके लिए क्यों दिमाग को उलझाए रखना। वस्तुतः दुखी तो हम अपनी सोच के कारण होते हैं, न करने योग्य अनावश्यक कार्यों के करने के कारण अथवा उनके न हो पाने के संताप के चलते दुखी होते हैं। जैन दर्शन में इसे अनर्थदण्ड कहा गया है जिनसे बचने की सलाह हर आत्मज्ञानी को दी जाती है। प्रायः हम किसी को भी मांगे—बिना व्यवसाय आदि का ज्ञान, उपदेश देने को लालायित रहते हैं।

यह मिथ्योपदेश है और पाप का कारण है। उदाहरण के लिए किसी को नफा—नुकसान व दुनियाँदारी का गणित समझाते हुए हिंसादि प्रवृत्तियों वाले जैसे मछली पालन, मुर्गी पालन, शराबखाने आदि की दुकान खोलने की राय देना आदि। बंधुओ! इसमें अकारण ही हिंसादि पापों का बंध होता है।

प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ प्रभु ने इस दुनियाँ का व्यापार चलाने के लिए 6 आवश्यक बताए थे— असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य। इन सभी उद्यमों में असि का मतलब तलवार अर्थात् सुरक्षा आदि की जिम्मेदारी से सृजित आजीविका, मसि अर्थात् लेखन कार्य, कृषि अर्थात् अन्न उत्पादन का मेहनतपूर्ण कार्य करके आजीविकोपार्जन जिसमें स्वतंत्रता व सम्मान दोनों हैं, विद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या ज्ञान के आदान प्रदान का माध्यम बनना, शिल्प अर्थात् हुनर, कारीगरी के विकास से आजीविका कमाना तथा वाणिज्य अर्थात् नीतिमत्ता पूर्ण व्यापारिक व्यवहारों से सृजित आजीविका का उपदेश हम सभी के कल्याणार्थ दिया। हमारी प्राचीन संस्कृति में कहावत प्रचलित है— उत्तम खेती, मध्यम वान, जघन्य चाकरी निश्चय जान। इसके अनुसार खेती ही मेहनतकश काम है किन्तु इसे श्रेष्ठ माना गया है। उत्तरभारत और पश्चिम में जैन लोग भले ही शाहूकारी करते हों किन्तु दक्षिण में आज भी बहुतेरे किसान जैन हैं जो नीति के साथ अहिंसक रूप से खेती आदि करते हैं। रासायनिक दवाओं के उपयोग से होने वाली हिंसा से दूर रहते हैं। आचार्य भगवन् कहते हैं कि हम व्यापार भी ऐसा करें जिसमें हिंसा कम से कम हो। मान लीजिए हम लोकोपयोगी अनाज का व्यापार करते हैं तो ज्ञात रहना चाहिए कि उसके संग्रह आदि में अनावश्यक हिंसा तो नहीं हो रही। व्यापार को कृषि के बाद दूसरे क्रम पर रखा गया है वशर्त उसमें अनावश्यक हिंसा न हो और जीवदया का पूरा विवेक हो। नौकरी जो आज प्रथम क्रम पर है उसे जघन्य माना गया है क्योंकि इसमें स्वतंत्रता का हनन होता है, उद्यमिता का ह्रास होता है, नव प्रवर्तन हतोत्साहित होता है।

पापरूप विचारों के फलस्वरूप ही मन में हिंसादि व्यापार का उपदेश मिथ्योपदेश है, ठगी आदि का विचार आना, मानव अंग और लड़कियों का भी व्यापार आज सफेदपोशी का चोला ओढ़कर धड़ल्ले से किया जाता है जो पूर्णरूप से पापाचार है, अनैतिक है।

नवरात्रि में हम श्रद्धा से दुर्गा पूजा तो करते हैं किन्तु अपनी ही बेटियों को गर्भ में ही मार गिराने में जरा भी नहीं हिचकिचाते हैं। सच्ची दुर्गा पूजा तभी हो सकती है जब हम कन्याओं के प्रति आत्मीयता रखते हए गर्भपात जैसी हिंसक, नीच व अमानवीय प्रवृत्ति पर कठोर नियंत्रण रखें। कई लोग अपने स्वार्थ की खातिर शादी की दलाली का व्यापार भी करते हैं। मात्र

पैसा कमाना ही ध्येय न हो अपितु उसकी नैतिकता की तरफ पूरा ध्यान हो। सुगंधित कस्तूरी के व्यापार में कई निरीह मृगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ जाता है पर हमें क्या? विवेक के बिना नफाखोरी की गणित बताने वाले मानवीयता के हिसाब में गलत साबित होते हैं।

प्रमादचर्या हिंसादि प्रवृत्तियों का दूसरा कारण है। हम स्वार्थ के लिए वृक्षों का निकंदन कर डालते हैं, बड़ी बड़ी खुदाइयां करवाते हैं, अंधश्रद्धा में जंगल जला देते हैं, पर्यावरण प्रदूषण करते हैं व पर्यावरण का विनाश करते हैं, व्यवसाय आदि के लिए फलफूल आदि का संग्रह करते हुए जीव हिंसा करते हैं। गुरुवर कहते हैं कि हम जैसी भावना करते हैं वैसा ही हमारे जीवन में घटित होता है इसलिए अपने जीवन के व्यापार में अनर्थदण्ड रूपी हिंसा एवं हिंसा के आयतनों, अनाचारों व अतिचारों से विवेकपूर्वक बचें।

संघस्थ मुनि सुधीरसागरजी ने अपने प्रवचन में इस नश्वर शरीर का मोह त्यागने के लिए कहा। इसका मोह साधना में बाधक है, वही श्रावक को कर्म बंध कराता है। यदि हम दुनियाँ को खराब बताने की बजाय दर्पण में अपना ही चेहरा निहारेंगे तो ज्ञात होगा कि हममें कितने अवगुण हैं। समस्या तो दूसरों के अवगुण ढूँढ़ते रहने से पैदा होती है। जो हो रहा है उसे होने दें उसमें अपनी कर्ता वृत्ति न लगाएं तो दुखी होने का निमित्त नहीं बनेगा। खुद के अपमान से आहत होने के बजाय दूसरों को सम्मान दें तो समस्याएं अपने आप कम हो जायेंगी।

## 40

### धर्म और तप युवास्था में करने का कर्तव्य है, वृद्धावस्था तो सल्लेखना के लिए है

तन मिला तप करो, करो कर्म का नाश।  
सूर्य चन्द्र से भी अधिक, है तुममें दिव्य प्रकाश।।

अखिल भारतीय दिगंबर जैन समाज के श्रेष्ठी किशनगढ़ राजस्थान निवासी श्री अशोक कुमार पाटनीजी परम पूज्य गुरुदेव के दर्शनार्थ पधारे। अपने धन का जन-कल्याण के कार्यों में सदुपयोग करने वाले तथा साधु संतो की सेवा में तन, मन, धन से समर्पित पाटनीजी का दिगंबर जैन समाज गांधीनगर ने भावभीना स्वागत किया। तप कल्याणक की बेल में राष्ट्र गौरव संत की उपाधि से विभूषित परम पूज्य आचार्यश्री सुनील सागरजी महाराज कल्याणकारी उपदेश दे रहे थे कि बंधुओ! यदि धर्म करना है, तपस्चर्या करनी है तो युवावस्था में ही अपने कदम इस पथ पर बढ़ाओ वरना

वृद्धावस्था धर्म करने की नहीं सोच सकते क्योंकि वह तो वास्तव में सल्लेखना की तैयारी के लिए है।

इतिहास के स्वर्णिम पन्ने गवाह हैं कि भगवान महावीर स्वामी जी ने युवावस्था में ही व्रत-नियम, संयम धारण किया था, तपस्चर्या का आचरण किया था और सिद्धात्म पद को प्राप्त किया था। वर्तमान के वर्धमान तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मति सागरजी, महात्मा गांधीजी, शंकराचार्य आदि महापुरुषों ने जवानी में ही सत्कर्मों का पुरुषार्थ कर अपने जीवन को सार्थक बनाया। भगवान महावीर ने 12 वर्षों की तपस्चर्या काल में मात्र 349 दिवस आहार किया ऐसा ही सुवर्णिम इतिहास इस पावन परंपरा के अनुयायी तपस्वी सम्राट आचार्य सन्मति सागरजी ने रचा, 50 साल की तपस्चर्या काल में 40 वर्ष कठोर उपवास की साधना का। तपस्चर्या के बाद कई कई दिनों के पश्चात् ऐसे संतो का आहार लेना आहार महोत्सव बन जाता है। तीर्थंकर प्रभु का आहार श्रावक के लिए पुण्य का साधन बन जाता है क्योंकि प्रभु का निहार नहीं होता। उनके आहार में पंचवृष्टि होती है। इसके विपरीत यदि सामान्य ग्रहस्थ का एक दिन भी निहार रुक जाय तो वह परेशान हो जाता है।

आप संसारी अज्ञानी मूढ़ जीव इस शरीर की सेवा करते हो और वे सम्यग्दृष्टि साधक, परम तपस्वी आत्मा की सेवा करते हैं, आप शरीर को संभालते हैं, वो मन को नियंत्रण में रखते हैं। अरे ओ तन पर रीझने वालो! कम से कम इसके पीछे के सच को समझो और इसके प्रति राग को कम करो। यह शरीर तो मल आदि का घर है। कहा भी है—

**पल रुधिर राध मल थैली, कीकस बसादि ते मैली।**

**नव द्वार बहे धिनकारी, अस देह करे किम यारी।।**

मानव शरीर का कोई अंग ऐसा नहीं है जिससे मल, पीव आदि धिनकारी पदार्थ आदि न बहते हों सिवाय माँ के दूध को छोड़कर। मोही, अज्ञानी, कामी इस सत्य को समझकर भी नहीं समझना चाहता। कुछ भव्य आत्मा जिनकी होनी अच्छी है वे इस सत्य को जानकर पीछे हट जाते हैं। यह शरीर गोरी चमड़ी तो गोबर पर लगे चांदी के वर्क के समान है जिससे प्रीति करना कदापि उचित नहीं। संसारी जीवों की दशा का वर्णन गुरुदेव ने इस दृष्टांत के द्वारा किया—

बात उस समय की है जब घरों से महिलाएं मैला उठाने आती थी। एक महिला मैले की टोकरी उठाकर जा रही थी, रास्ते में उसे मखमल का सुन्दर टुकड़ा पड़ा मिलता है, वह उसे उठाकर मैले की टोकरी पर डाल देती है, कुछ मनचले उसका पीछा करने लगते हैं यह मानकर कि इतने सुन्दर कपड़े के नीचे अवश्य ही माल छिपा होगा। वह महिला

अचानक ठिठककर उन युवकों से पूँछती है क्या चाहिए तुम्हें? वे बोले कि सुन्दर कपड़े के नीचे जो माल छिपाकर रखा है वह हमें चाहिए। वह बोली भाइयो ऐसा नहीं है, इसमें तो मैला है। उनमें से कुछ को लगा कि वह सच बोल रही है और वे पीछे रुक गए जबकि बाकी लोग अभी भी पीछे चलते रहे। उस महिला ने उनसे पुनः प्रश्न किया तो वे बोले कपड़ा हटाकर दिखाओ। कपड़ा हटाने पर मल दिखा तो कुछ लोग जिनका विश्वास दृढ़ हुआ वे वापस अपने स्थान पर चले गए लेकिन अब भी कुछ मूढ़ पीछे चल रहे थे। झुंझलाकर पुनः उस महिला ने उनसे पूँछा तुम अब क्यों आ रहे हो? वे बोले कि इस मल में माल छिपा हुआ है। उस महिला ने टोकरी को पटक दिया फिर भी वे असंतुष्ट ही रहे और वस्तु स्थिति को स्वीकार नहीं सके। आज के कामी और शरीर के प्रति रागी मनुष्य की यही मूढ़ दशा है जो अपराध को जन्म देती है।

महिला दासता के उद्धारक महावीर प्रभु की आभा का भान तप कल्याणक की महिमा से होता है जब वो बेड़ियों में जकड़ी, दासता से बंधी, तीन दिनों से भूखी प्यासी सती चंदनबाला से आहार लेकर उसका उद्धार करते हैं। हम भी भावना भाएं कि हे करुणा के सागर वीर प्रभु हमारा भी इस भव सागर से उद्धार कर दो।

केवलज्ञान कल्याणक ज्ञान की आभा में मान कषाय को समाप्त कर भावविशुद्धि को बढ़ाने का पर्व है। गौतम गणधर के मान खण्डित होने और उनके द्वारा जैन धर्म को अंगीकार करने के प्रसंग के माध्यम से गुरुदेव ने केवलज्ञान की महिमा की दिव्यध्वनि समवशरण से बिखेरी और देशना की कि इस संसार में 6 द्रव्य, 7 तत्त्व, 9 पदार्थ तथा पंचास्तिकाय ही शाश्वत हैं, यह जीवात्मा ही चिन्मय स्वरूप है। जब तक इस स्वरूप का भेदविज्ञान नहीं होता तब तक जीव संसार में परिभ्रमण करता रहता है। जिसको सम्यक् बोध है, सम्यक् दृष्टि है तथा निर्मल चारित्र है वे इस भव सागर से पार उतरते हैं। जो खुली आँखों से दिखता है वह शाश्वत नहीं अर्थात् अनित्य है और जो मैं स्वयं हूँ वह दिखता नहीं, इस सत्य को भली भांति आत्मसात कर लेना होगा। श्रावक अणुव्रत धारण कर श्रावकाचार का पालन करें मधु मद्य मांस का त्याग करें, बेहोश नहीं रहें तथा होश में रहते हुए भविष्य में महाव्रत धारण करें तभी कल्याण हो सकता है। जिनमूर्ति समवशरण आदि चेतना को जागृत करने में निमित्त है। समवशरण में अभव्य जीव नहीं आ सकता। भगवान महावीर ने धर्म की बहुत ही सुन्दर परिभाषा की है कि उत्तम क्षमा आदि दस धर्म हैं, रत्नत्रय धर्म है, जीव रक्षा धर्म है, हम किसी भी रूप में इसका पालन कर सकते हैं। प्रभु तो उपदेश देते हैं लेकिन संकल्प शक्ति के साथ सुधरना तो खुद को ही पड़ेगा। सभी भेद विज्ञान को प्राप्त हों, निर्मोही तथा बीतरागी बनें ऐसी मंगल कामना।

## 41

## गांधीजी का अहिंसामय जीवन वर्तमान में भी प्रासंगिक एवं प्रेरणास्पद

गांधीजी की 150वीं जयन्ती विश्व अहिंसा दिवस पर विशेष प्रवचन

झाड़ झंकाड़ को उखाड़ के,  
जो साफसफा मैदान बना दे उसे आँधी कहते हैं।  
जो विदेशी सल्तनत को उखाड़ के,  
देश को सुखमय बना दे उसे महात्मा गाँधी कहते हैं।।

अहिंसा कितना बड़ा शस्त्र है शायद गांधीजी से पूर्व इसका प्रयोग किसी ने इस तरह से इतनी श्रद्धा व विश्वास के साथ नहीं किया होगा इसीलिए मानवता के इतिहास में गांधीजी का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। गांधीजी का 150वीं जयन्ती वर्ष पर उनके प्रेरणास्पद अहिंसामय जीवन की वर्तमान प्रासंगिकता पर संबोधित करते हुए आज की प्रातःकालीन प्रवचन सभा में गुरुदेव आचार्य सुनील सागरजी महाराज ने कहा कि आज के युग में अहिंसक जीवन नहीं जिया जा सकता अथवा अहिंसा को जीवन में अपनाना व्यवहारिक नहीं हैं उनके लिए गांधीजी का जीवन जीवंत उदाहरण है। आज बच्चों ने उनकी भूमिका निभाते हुए बिल्कुल सत्य कहा कि मेरा जीवन ही मेरा संदेश है। ऐसा कहने वाला महापुरुष विरला ही होता है जो दावे के साथ कह सके कि जैसा मैंने किया वैसा आप भी कर सकते हैं। वस्तुतः उनके जीवन में कथनी करनी, विचार, व्यवहार आदि में कभी कोई अंतर नहीं रहा। जबकि आज के नेताओं में यह चरित्र बहुत मुश्किल से देखने को मिलता है। गीता में ज्ञान योग, भक्ति योग और कर्म योग को जीवन की पूर्णता के लिए जरूरी माना गया है। गांधीजी में इन तीनों का समन्वय था। इतिहास में कई सम्राट ऐसे हुए जो कभी जैन व बौद्ध धर्म का दामन थामे रहे किन्तु उन्होंने भी हथियार उठाया जबकि सारी दुनियाँ पर और लोगों के दिलों पर राज करने वाले अहिंसा के पुजारी ने कभी हथियार नहीं उठाया। वे ता उम्र दृढ़ता के साथ अहिंसा का दामन थामे रहे। देश को विदेशी आक्रांताओं की गुलामी से मुक्त करने के लिए जिसने न तो कभी स्वयं हथियार उठाया और न हथियार उठाने का समर्थन किया। गांधीजी तब भी नेता थे आज भी नेताओं के नेता हैं। गरम दल के देशभक्तिपूर्ण प्रयासों को कम नहीं आंका जा सकता किन्तु इस रस्ते पर चलकर इतनी जल्दी आजादी नहीं मिल सकती थी। इसीलिए गांधीजी के बारे में ये पंक्तियां बहुचर्चित हैं—

दे दी हमें आजादी बिना खडग बिना ढाल,  
साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।

जो लोग भारत को जानते हैं वे गांधी को अवश्य जानते हैं और जो गांधी को जानते हैं वे प्रभु महावीर की अडिग अहिंसा को जानते हैं। इन मूल्यों को श्री राम और कृष्ण ने भी अपनाया लेकिन महावीर स्वामीजी ने पूरे दमखम के साथ समाज की विकृतियों के सामने अहिंसा के करुणामयी स्वरूप को रखा। अहिंसा देश की संस्कृति है किसी व्यक्ति की बपौती नहीं है। हमने हमेशा अहिंसा का जीवन जिया है। जैनों का प्रतीक "अहिंसा परमो धर्मः" महाभारत का सूत्र से लिया गया है।

बड़े ही दुख की बात है कि गांधीजी ने जिस देश की आजादी के लिए अहिंसा का मार्ग अपनाकर अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया आज उस देश में बूचड़खाने बढ़ते जा रहे हैं। पंचेन्द्रिय प्राणियों का निर्ममता से कत्ल किया जा रहा है जो कदापि सही नहीं है भले ही उसके लिए कोई भी तर्क क्यों न रखे जाएं। इस धरती पर सभी जीवों को जीने का समान अधिकार है। भगवान महावीर ने कहा कि व्यापार आदि के लिए मर्यादित हिंसा तो हो सकती है किन्तु संकल्पी हिंसा नहीं हो सकती, किसी जीव की हिंसा नहीं हो सकती। हिंसा का व्यापार किंचित भी उचित नहीं। लाल बहादुर शास्त्री एक ईमानदार व कर्मठ पूर्व प्रधानमंत्री जो जिंदगीभर सादगी का दामन थामे रहा आज उनका भी जन्म दिन है। उन्होंने अपनी देश की गरिमामयी संस्कृति के अनुरूप जय जवान जय किसान का नारा दिया था। किसान हमारे अन्नदाता हैं जो देश की अंदर से रक्षा करता है और जवान हमारी सीमाओं की रक्षा करता है। देश में उनके कल्याण के लिए हर संभव प्रयास किए जाने ही चाहिए। गांधीजी के यदि आर्थिक स्वराज की बात कहें तो देश का विकास तभी संभव है जब अहिंसक स्वदेशी उद्योगों का विकास हो लोग विदेशी वस्तुओं का उपयोग करने से बचें। इससे हमारे देश की पूँजी हमारे देश में रहेगी और उसका सच्चे देश हित में उपयोग हो सकेगा।

राष्ट्रपिता गांधीजी ने संत का रूप अख्तियार किया। वे ऐसे व्यक्तित्व हैं जो संत बने बिना, संत कहलाने वाले बने। यदि जैन धर्म शिक्षा के अनुरूप उनके जीवन को देखें तो वे अपने शरीर पर दो-ढाई वस्त्र ही रखते थे जो वस्तुतः क्षुल्लक त्यागी व्रती की चर्या है। आहार आदि में भी उनका संयम अनुकरणीय कहा जा सकता है। उन्होंने कभी भी कुदरत से भी अपनी मर्यादित जरूरतों से अधिक ग्रहण करने का प्रयास नहीं किया, कभी उन पर मालिकी का हक जाहिर नहीं किया, सभी जीव आत्माओं को समान समझा। यहाँ तक कि जिस व्यक्ति ने उन्हें गोली मारी उसके प्रति भी दुर्भाव उनके मन में नहीं आए परिणाम कलुषित नहीं हुए और मुँह से निकला हे राम। यह जैन संस्कृति में भावविशुद्धि के साथ देह त्याग अर्थात्

संधारा का ही एक स्वरूप है। विषयों में सम्पूर्ण अनासक्ति और एक अणुव्रती की तरह श्रद्धा और विश्वास सत्यादि अणुव्रतों का पालन उनके जीवन का पर्याय था। शरीरश्रम, अस्वाद स्वदेशी आदि को जीवन में जरूरी मानते हुए यम नियम की भांति उसे जीवन का हिस्सा बना लिया था। सार्वजनिक जीवन में रहते हुए श्रावकधर्म की श्रेष्ठ साधना का शायद ही इससे बेहतर उदाहरण मिल सके जिसमें इतनी पारदर्शिता हो। विलायत में पढ़ाई के लिए गए युवा मोहनदास ने माँ के सामने एक जैनाचार्य से मांस, मदिरा और परस्त्री सेवन न करने की प्रतिज्ञा की और उसका पूर्ण निष्ठा से पालन करते हुए ऐसी विचारधारा रखने वाले लोगों के मुँह पर तमाचा मारा जो यह मानते थे कि इसके उपयोग के बिना विदेश में जीवन संभव नहीं है। उस युवा ने वहाँ रहते हुए शाकाहार सोसायटी बनाई वहाँ के लोग इनके साथ जुड़े। इसी आचरण को देखकर संभवतः गुरुदेव रविन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हें सर्वप्रथम महात्मा की उपाधि से नवाजा होगा। आज गांधी नामधारी तो कई एक हैं लेकिन महात्मा कोई नहीं। उनकी पत्नी कस्तूर (बा) में भी अहिंसा के संस्कार कूटकूटकर भरे थे। दक्षिण अफ्रीका में गंभीर रूप से बीमार पड़ने पर डॉक्टर ने उन्हें मांस का शोरबा लेने के लिए कहा लेकिन उन्होंने दृढ़ता के साथ इंकार कर दिया कि प्राण भले ही चले जाएं किन्तु अहिंसा का प्रण खंडित नहीं होगा। गांधीजी के आध्यात्मिक गुरु थे श्रीमद् राजचन्द्र जिनका उनके जीवन पर प्रभाव देखने को मिलता है।

सही मायनों में संस्कृति की रक्षा करते हुए अपना जीवन स्वयं के लिए, समाज के उत्थान के लिए तथा देश के विकास के लिए समर्पित कर दिया आज उस देश में अधिकृत संस्थाएं इसकी धज्जियां उड़ा रही हैं। गांधीजी तो विदेश में भी व्यभिचार से दूर रहे आज उसी देश की सुप्रीम न्यायायिक संस्था उसे अपराध की श्रेणी से बाहर कर देती है वह भूल जाती है मर्यादा पुरुषोत्तम राम, कृष्ण, सीता, अनुसुइया की गरिमामयी भूमिका। यहाँ महिलाओं के अधिकारों की महिला सशक्तीकरण का कोई विरोध नहीं है अपितु शीलरक्षा के आदर्श को बचाने का क्रांतिकारी पहल है हर बुद्धजीवी को संस्कारी को इसमें आगे आना चाहिए और विकृतियों को पनपने से रोकना चाहिए। गांधी और उनका जीवन अहिंसक जीवन के पर्याय बने इसीलिए समस्त जगत उनके जन्मदिन को विश्व अहिंसा दिवस के रूप में मनाने में स्वयं को गौरवान्वित महसूस करता है। नेल्सन मंडेला जैसी विश्व की जो महान हस्तियां जो उनसे कभी मिली नहीं उन्होंने भी गांधी के जीवन का अनुकरण किया और इस समाज में अपना विशिष्ट मुकाम बनाया तथा लोगों के समक्ष अहिंसा की जय का उदाहरण प्रस्तुत किया।

## 42

## इंसान के बनाए भगवान को लोग पूजते हैं किन्तु भगवान के बनाए इंसान को नहीं

जो सही है उसे सभी स्वीकारें यह जरूरी नहीं और इसी प्रकार जिसे लोग स्वीकारते हों वह सही ही हो यह भी जरूरी नहीं। आचार्य भगवन् श्री सुनीलसागरजी महाराज ने आज की इस मानवीय बिडम्बना पर प्रातःकालीन सभा में श्रावकगणों को संबोधित करते हुए कहा कि इसके कारण समाज बँट रहा है, एक दूसरे के मध्य प्यार अपनापन और सहिष्णुता समाप्त हो रही है। उन्होंने कलाकार की व्यथा के माध्यम से आज की विकृत दशा के चित्र समाज के सामने रखे। एक बार एक कलाकार ने भगवान से पूछा कि भगवान आपके द्वारा बनाए गए मेरे जैसे इंसान हमेशा झगड़ते रहते हैं किन्तु वे मेरे द्वारा आपके जैसे बनाए गए मिट्टी के पुतलों व पत्थर की मूर्ति को पूजते हैं। यहाँ तक कि यदि अज्ञानता अथवा अन्य किसी कारणवश उस मूर्ति पर कोई चढ़ जाए तो इतना उपद्रव मचाते हैं कि उस निर्जीव मूर्ति के पीछे हजारों लाखों सजीवों का कत्ल करने पर भी आमादा हो जाते हैं। कैसी विचित्र दशा है इस संसार की?

स्वरूप की समझ अर्थात् जीव तत्त्व के सम्यक् बोध के अभाव में प्रायः ऐसा होता है। कतिपय लोग यह समझ जाएं कि जो आत्मा मेरे अन्दर है वही दूसरों के अन्दर है तो न तो ये विकृतियाँ पैदा होंगी और न ही आए दिन उपद्रव खड़े होंगे। बताइए, ये हिन्दू, मुस्लिम, सिख ईसाई, बौद्ध, जैन आदि किसने बनाए? सच्चा धर्म तो मानव धर्म है जिसमें सर्वे भवन्तु सुखिनः का संदेश समायामा हुआ है।

भगवान महावीर स्वामीजी कहते हैं कि हे आत्मार्थियो! आत्मा के भेद विज्ञान को समझो। धर्म के नाम पर उत्पन्न उन्माद धर्म नहीं है। धर्म में विकल्प नहीं होते। धर्म तो वह है जिसे धारण किया जा सके और जो आत्म विशुद्धि के सरल मार्ग पर ले जा सके। मुनि महाराज का दृष्टि फलक विस्तृत होता है वे अहिंसा महाव्रत का दृढ़ता के साथ पालन करते हुए करुणा भाव के साथ एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों की रक्षा करते हैं, सत्य, अचौर्य और ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह मुनिजन के उत्तम चरित्र व आदर्श आचरण को अपनाते हैं। कई उत्कृष्ट श्रावकों में भी इन व्रतों के पालन की ईमानदारीपूर्ण निष्ठा देखने को मिलती है। ऐसा ही एक प्रसंग पं. बनारसी दास जी के जीवन का है कि वे अपने घर चोरी करने आए चोर के द्वारा चुराए गये श्रेष्ठ रत्नों की गठरी को बांधकर चोर के सिर पर रखवाने में मदद करते हैं ताकि वह उस गठरी को आसानी से उठाकर अपने घर ले जा सकें। इस अप्रत्याशित मदद से प्रसन्न

चोर जब अपनी माँ को सारा वृतांत सुनाता है तो मां तुरंत समझ जाती है कि वह तो अपरिग्रही निरासक्त पं. बनारसी दास का घर रहा होगा। अरे! जिनके पास संयम रत्न होता है वे उसके सिवाय अन्य किसी भौतिक रत्न की परवाह नहीं करते और यम—नियम में तय किए गए परिग्रह परिमाण के अनुरूप समता के साथ जीवन यापन करते हैं।

अचौर्य धर्म यह भी कहता है कि बिना दिए हुए किसी वस्तु को ग्रहण करना अथवा पड़ी हुई वस्तु को उठा लेना भी चोरी है। ये संस्कार हमें अपने बच्चों को सिखाने चाहिए। जो वस्तु अपनी नहीं हैं वह भले ही कितनी ही कीमती क्यों न हो, ऐसी बिन मालिकी की वस्तु को प्राप्त करने का लालच कदापि अपने मन में नहीं लाना चाहिए। समझे जरा इस दृष्टांत के माध्यम से—एक छोटा सा बच्चा जिसे संभवतः धर्म के संस्कार नहीं मिले, उसे एक 500 की नोट पड़ी दिखती है। उसे ज्ञात होता है कि वह संभवतः उसी व्यक्ति की है जो उसे ढूंढ़ रहा है। लेकिन वह नोट उसकी नजर में न आ जाय इसलिए वह बच्चा उसे अपने पैर के नीचे दबाकर खड़ा हो जाता है ताकि उसके जाने पर वह उसे आसानी से उठा सके। हे भव्यजनो! यह कृत्य सही नहीं है। सोचो! उस व्यक्ति को कितना दुख होगा, उसके कितने अनिवार्य कार्य रुक सकते हैं, इसके कारण किसी के जीवन पर भी आँच आ सकती है जिसका नोट खोया है कदाचित् वह व्यक्ति अपनी बीमार माँ के लिए दवा लेने जा रहा हो अथवा वह अपने छोटे छोटे बच्चों वाले भूखे परिवार के लिए राशन का जुगाड़ करने जा रहा हो अथवा वह अपनी बेटी के इम्तिहान की फीस जमा करने जा रहा हो, क्या होगा तब? अरे! इससे कितना बड़ा गुनाह हो जाता है हमसे इस अचौर्य व्रत की आसाधना व असावधानी में। बस इतना सा ख्याल हमारे जेहन में समा जाय तो यह मृगतृष्णा मन से निकल जायेगी, हृदय निर्मल हो जायेगा और फिर सहजता से होगा जीवन में अचौर्य व्रत का पालन। इसलिए हम सभी का यह कर्तव्य है कि हम अपने बच्चों में सत्य अहिंसा अचौर्य व्रत के श्रेष्ठ संस्कार डालें उससे उनकी नैतिकता को निरंतर दृढ़तर करते रहें।

## 43

### धर्म का सेवन करो, मृदु बनो, मुलायम बनो

गुजरात के उप-मुख्यमंत्री नितिनभाई पटेल का  
आचार्यश्री सुनील सागरजी के दर्शनार्थ आगमन

गांधीनगर में आचार्यश्री सुनील सागरजी महाराज के दर्शनार्थ गुजरात के उप-मुख्यमंत्री श्री नितिनभाई पटेल पधारें। उनके सरल स्वाभाव को लेकर

गुरुदेव ने कहा कि जब वो दर्शन के लिए आये थे तब उन्हें बताया गया था कि आचार्यश्री मौन में हैं थोड़ी देर बैठे तो शायद बात हो सकेगी। उन्होंने बड़ी ही विनम्रता से कहा कि महाराजश्री की शांत मुखमुद्रा देखकर ही ज्ञात होता है कि यहाँ अहिंसा और करुणा की धारा बहती है। उन्होंने बहुत श्रद्धा भाव से वंदन किया। स्वाध्याय पूरा होने पर गुरुदेव ने उन्हें स्वरचित प्राकृत भाषा की श्रेष्ठ कृति सुनील प्राकृत समग्र भेंट की। नितिनभाई ने उसमें से देखकर बाहुबली स्तुति का पठन किया और कहा कि सच में प्राकृत भाषा संस्कृत से भी अधिक प्राचीन है। गुरुदेव कहते हैं कि कोई व्यक्ति विनम्र होता है तभी मुँह से अच्छे शब्द निकलते हैं। इसलिए हे भव्य जीवो, धर्म का सेवन करो, मृदु बनो, मुलायम बनो। मृदुता नहीं है तो हाथ भी नहीं जुड़ते। अरे! वहाँ तक झुके कौन? संतों का दर्शन बहुत पुण्य से होता है उसमें भी दिगंबर संत का दर्शन तो बहुत मुश्किल से होता है क्योंकि पवित्र व्यक्ति तक पहुँचने के लिए स्वयं के मन में भी थोड़ी सी पवित्रता तथा पल्ले में थोड़ा सा पुण्य होना ही चाहिए। मृदु अर्थात् ऋजु, सरल। दुनियाँ में बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो सरल हैं। लोग उनकी सहजता का फायदा उठाकर भले ही उन्हें ठग लेते हों लेकिन अंततः उनका भला नहीं होता, यह थोड़े दिन ही चलता है। यदि हम दूसरों के लिए खार्ई खोदते हैं तो उसमें स्वयं गिरते हैं। निर्लोभता, शुचिता, मन की, हृदय की पवित्रता ये आत्म स्वभाव है इसलिए कपट नहीं करना चाहिए।

शरीर को तो बहुत लोग पवित्र करते हैं और इस समय सभी तन की और घर की सफाई में लगे हैं, सब कुछ चकाचक कर रहे हैं लेकिन ये सफाई तब तक बेकार है जब तक मन की सफाई नहीं होती। कुछ लोग सफेद कपड़े पहनते हैं पर अंदर से इतने काले होते हैं कि कोई कर्म-कुर्म करने से नहीं चूकते। भगवान् महावीर स्वामीजी कहते हैं कि बाहर से जितने अच्छे रह सकते हो रहो किन्तु भीतर से अच्छे से अच्छा बनने की सतत कोशिश करते रहो।

भगवान् महावीर स्वामी का समवशरण लगा हुआ था। सभी श्रोता अपनी अपनी जगह बैठे हुए थे तभी किसी ने प्रभु से पूँछा कि हम कैसे चले? कैसे बैठें? कैसे साँएं? कैसे खाएं-पीएं? तथा कैसे बोलें ताकि पाप का बंध न हो। बंधुओ! प्रश्न बहुत सीधा सा किन्तु महत्वपूर्ण है। कृपालु प्रभु ने दिव्यध्वनि के द्वारा इसी प्रश्न में से उत्तर देते हुए कहा कि यत्नपूर्वक, सावधानीपूर्वक चलो, यत्नपूर्वक चेष्टा करो, यत्नपूर्वक बैठो, यत्नपूर्वक ही विश्राम आदि करो, यत्नपूर्वक ही भोजन करो तथा यत्नपूर्वक ही हित-मित प्रिय वचन बोलो। यत्नपूर्वक व्यवहार करने वाले को पाप का बंध नहीं होता। क्योंकि जिसके जीवन में यत्न या प्रयत्न रूपी समितियाँ हैं वह पापों से बंधता नहीं है। मुनिराज ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण, तथा व्युत्सर्ग आदि 5 समितियों का पालन करते हैं अर्थात् वे चलने में, बोलने में, वस्तु को इधर-उधर उठाकर रखने में तथा मलमूत्र आदि का विसर्जन करते समय

सावधानी रखते हैं कि जीवों की हिंसा न हो। आचार्य अमृतचंद्राचार्यजी कहते हैं कि मूलाचार जैसे आगम ग्रंथ में मुनियों के लिए तो यह आचरण बताया ही गया है किन्तु श्रावक भी इसका यथाशक्ति यथासंभव पालन कर पापों से बच सकते हैं। समिति का अर्थ ही है सावधानी या यत्नपूर्वक प्रवृत्ति। पूर्वाचार्यजी पुनः निर्देशित करते हैं कि चलते फिरते हो तो सम्यक् ढंग से चलो। कूदते-फांदते चलने से कितने ही जीवों का घात होता है। गाड़ी चलाते समय भी कितने जीवों का घात हो जाता है। श्रावक कहते हैं कि ऐसे में हम ईर्या समिति का पालन कैसे करें? गुरुदेव कहते हैं कि बिना होश के, अधिक तेजी से गाड़ी भगाने से, असमय में तथा बिन प्रयोजन गाड़ी चलाने से हम असावधानी के कारण जीवों का घात करके पाप बंध कर लेते हैं। जिसके चलते कई बार जहाँ हमें पहुँचना होता है वहाँ की तो छोड़ो किन्तु जहाँ 50 साल बाद पहुँचने वाला होता है (मृत्यु के पास) वहाँ समय से पहले पहुँच चुके होते हैं। यदि हम आंशिक रूप से ईर्या समिति का पालन करें, दिन में सूर्य निकलने के पश्चात् चलें तो अपेक्षाकृत रूप से जीवों का घात कम होगा और सभी जीवों के प्रति करुणा व दया की संवेदनाएँ हमारे मन में बनी रहेंगी। आपके वाहन का शिकार होने वाले पशु-पक्षियों के स्वजनों को भी अपनों के खोने का अहसास होता है और वे कई रूपों में इसका प्रतिउत्तर भी देते हैं। ज्ञानियो! आप कहोगे कि हाइवे पर कम गति से चलना संभव नहीं होता तो कम से कम होश में तो चलो ताकि अनावश्यक रूप से असावधानीवश जीवों का घात न हो। इसे सम्यक् गमना-गमन कहा है।

इसी तरह बोलने का तरीका भी सम्यक् होना चाहिए। किसी के प्रति खराब, कठोर, असत्य वचन नहीं बोलने चाहिए। बड़ों के साथ बड़ों की तरह आदरपूर्वक बोलना ही सम्यक् भाषा है। उसे भाषा समिति कहा है। लोग कहते हैं कि आज झूठ के बिना काम नहीं चलता लेकिन सभी जानते हैं कि एक झूठ को छिपाने के लिए हजार झूठ बोलने पड़ते हैं और अंत में वह झूठ पकड़ा ही जाता है तब शर्मिंदगी उठानी पड़ती है ऐसे में सत्य के आचरण से गुरेज क्यों? गांधीजी ने अपने जीवन में सत्य को अपना कर सिद्ध कर दिया कि सत्य सरल है इसके पालन में किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं है।

इसी प्रकार तीसरी एषणा समिति के संदर्भ में गुरुवर कहते हैं कि खानपान में शुद्धि की भी नितांत आवश्यकता है। कहते भी हैं जैसा खाओ अन्न वैसा होवे मन, जैसा पीओ पानी वैसी बोलो वाणी। आज बाजार में जो चीजें बन रही हैं, जो खानपान की वस्तुएं विदेशी कंपनियां बना रही हैं उनमें न शुद्धता है न पवित्रता और न ही आरोग्य की गारंटी। मांसाहार की मिलावट संभावना, अभक्ष्य की संभावना को भी नकारा नहीं जा सकता। रस में विष मिलाकर बिकने वाली खूबसूरत पैकिंग में मिलने वाली, सहजता से

तैयार रूप में उपलब्ध होने वाली वस्तुओं का हमें धर्म की दृष्टि से, आरोग्य की दृष्टि से त्याग कर देना चाहिए। बाजार की चीजें खाने से लोग बीमार पड़ते हैं। बिसलरी के जल में उसकी बोतल की प्लास्टिक में विष प्रोसेस किया जाता है उसे हम फैशन में इसे पी रहे हैं। सम्यक् एषणा समिति यही कहती है कि खान पान की शुद्धि बहुत जरूरी है।

आचार्य भगवन् कहते हैं कि किसी वस्तु को ग्रहण करना है रखना है तो उसमें भी विवेक रखो, असावधानी से, बिना देखे यूँ ही कहीं पर पटक देने से जीवों के घात होने की संभावना रहती है। इसी प्रकार व्युत्सर्ग समिति में देखभाल कर निर्जन स्थल पर जहाँ जीव न हो वहाँ, थूक— मलमूत्र विसर्जन करने का निर्देश दिया गया है।

होश में जीने का नाम है समिति अथवा समितिबद्ध आचरण। आँखे खुली होने से ही कोई होश में नहीं होता। कई बार, बेसुधी में आँखे खुली होने पर भी सामने दिखने पर भी कुछ भी दिखाई नहीं देता है। बेहोशी में जीना पाप है, सावधानी अर्थात् प्रयत्नपूर्वक जीना ही पुण्य में जीना है। इसलिए मुनिराज हरपल होश में रहते हैं। हमें समिति के माध्यम से बाहर तो स्वच्छता रखनी ही है इसके साथ साथ अंतरंग की स्वच्छता भी बनाए रखनी है तभी जीवन मंगलमय बनेगा।

जैन धर्म में उत्तमक्षमा आदि की पालना सिर्फ पर्युषण के लिए ही नहीं है, वह समय तो इन्हें सीखने का है और इसका अभ्यास तो जीवनभर करना है ताकि श्रावकाचार व आत्मशुद्धि बनी रहे। हम नियम कर लेते हैं कि गुस्से का त्याग कर दिया लेकिन कारण मिलते ही गुस्सा आ जाता है। आचार्य भगवन् कहते हैं कि इस नियम का ध्यान आते ही वह टल जाता है जीव कर्म बंध से बच जाता है। जो लोग मन में बहुत ज्यादा जहर रखते हैं वे सांप बनते हैं। तुम जिसे काटोगे वह तो मर जायेगा लेकिन इसके दुष्परिणामों से तुम भी बच नहीं पाओगे। यदि तुम चाहते हो कि लोग तुमसे डरें तो अगली पर्याय में तुम्हें शेर बनना पड़ सकता है। इसलिए हे भव्य आत्माओ! जीवन को सहज बनाओ, नहीं तो संसार बढ़ेगा।

पंचेन्द्रियों का संयम और मन का संयम तथा 5 निकाय के जीवों की रक्षा जरूरी है। दीपावली पर पटाखों से कितनी हिंसा, पर्यावरण प्रदूषण, पशु-पक्षी तथा मानव सम्पदा का नुकसान होता है लगता है कि हम रुपये में ही आग लगा रहे हैं। यदि हम इस पैसे का सदुपयोग जरूरतमंदों के लिए करें तो हम पाप से बचेंगे ही साथ ही मानवता को धारण कर जीवन को सरल बना पायेंगे। यह समय वीर प्रभु के निर्वाण महोत्सव का है, प्रभु की आराधना का है, अतिरेक के त्याग का है, कषायों के त्याग का है और विषयवासनाओं के त्याग का है। यह विचार करें कि मेरा कुछ भी नहीं है,

कुछ भी मेरे साथ जाना नहीं। अपने ज्ञायक ब्रह्म स्वरूप आत्मा में लीन होना ही जीवन का परम लक्ष्य है। प्रभु महावीर ने यही तो किया है। 12 साल की कठोर तपस्या के बाद। हम सभी इसी ब्रह्म स्वरूप की आराधना करना सीखें ताकि समाज में शांति का माहौल बने और हम अशांति का करण न बनें।

## 44

### भगवान महावीर के पूर्वर्भवों से लें सम्यक् जीवनचर्या का बोधपाठ

यदि मार्गदर्शक सही हो, तो दीपक भी काम कर जाता है।

यदि अवसर की पहचान सही हो, तो वह महावीर बन जाता है।।

भगवान महावीर स्वामीजी के जीवन चरित्र पर प्रवचन करते हुए आचार्य भगवन् श्री सुनील सागरजी महाराज ने श्रावकगणों को बोधपाठ देते हुए कहा कि भगवान महावीर का जीव पुरुषा भील था, उसने अवसर की सही पहचान नहीं की इसलिए वह भव भव में भ्रमण करता रहा। लेकिन उसके जेहन में अहिंसा की ज्योति थी इसलिए वह स्वर्ग भी गया।

कहते हैं कि बिना तपस्या के, बिना मुनिधर्म का पालन किए मोक्ष नहीं मिलता, यह उक्ति भगवान महावीर की जन्म जन्मान्तर की यात्रा में चरितार्थ हुई। उनका जीव कितनी ही बार स्वर्ग गया और वहाँ के भोगों में आसक्त रहा इसलिए त्रस-स्थावर की योनियों में चक्कर खाता रहा। शुभ कर्म एवं सकारात्मक संयोगो के चलते मनुष्य भव भी मिला लेकिन सही अवसर की पहचान के बिना, तपस्या के बिना, सम्यक्त्व का पालन न करने से, अभिमान आदि के कारण पतन के गर्त में गिरता रहा। उनके भवभ्रमण की एक प्रेरक कथा जिसमें से बोध पाठ लेकर हम अपने जीवन को सुधार सकते हैं।

भगवान महावीर का जीव विश्वनंदी के रूप में मगध देश के राजगृही में जन्म लेता है। यह कथानक सुविज्ञ श्रावकगणों के लिए कई बोधस्वरूप फुटप्रिंट छोड़ जाता है। विश्वनंदी के पिता अपने भाई को राजपाट देकर तथा उसे युवराज बनाकर दीक्षा ले लेते हैं। विश्वनंदी के चाचा अत्यन्त धार्मिक हैं, विश्वनंदी अत्यन्त बलशाली, आज्ञाकारी व सुपात्र है। एक प्रसंग बनता है कि चाचा का पुत्र (कृपुत्र) विशाखनंदी अपने पिता राजा से भोगविलास के लिए उस बगीचे को लेने की जिद करता है जिसे उनके भतीजे युवराज विश्वनंदी ने बड़े जतन से अपने लिए विकसित किया था। राजा उसे तरह तरह से नीति से समझाते हैं कि उसकी मांग सही नहीं है। किन्तु अंततः पुत्र हठ के आगे अपने भाई के बेटे के साथ मायाचारी करने को विवश हो जाते हैं। वे विश्वनंदी को

छल से छद्म युद्ध के लिए भेज देते हैं और अपने बेटे के लिए बगीचा खोल देते हैं। बंधुओ! कपट छिपता नहीं है। विश्वनंदी को सारा माजरा ज्ञात होते ही वह सीधा उद्यान में पहुँचता है जहाँ उसका चचेरा भाई विशाखनंदी बैठा हुआ है। वह विश्वनंदी का क्रोध देखकर पेड़ पर चढ़ जाता है लेकिन यह क्या? बलशाली विश्वनंदी उस पेड़ को जड़ सहित उखाड़कर जमीन पर पटक देता है, पत्थर के खंभे को भी उखाड़ देता है और भागते हुए विशाखनंदी से कहता है कि ले अब तू ही इसे रख। बंधुओ! समझो, छल-कपट पूर्ण आचरण करने से परिवार में टूटन आती है इसलिए मायाचारी के धिनौने खेल खेलने से बचो।

विश्वनंदी का मन मायाचारी से व्यथित हो जाता है और वह अपने चाचा के पास जाकर अपने पिता की भांति आत्मसाधना करने हेतु दीक्षा की अनुमति ले लेता है। वहीं राजा को भी अपने कृत्य पर ग्लानि होती है और वह भी विशाखनंदी को राज्य सौंपकर दीक्षा ले लेता है।

पहले विश्वनंदी और फिर पिता के दीक्षा लेने से वह विलासी विशाखनंदी और अधिक स्वच्छंद तथा स्वेच्छाचारी बन जाता है, भोगविलास में आकंठ डूब जाता है, वैश्यासेवन करने लगता है। मंत्रिगण जब ऐसा देखते हैं तो उसे पदच्युत कर देते हैं। विशाखनंदी अब दूसरे राजा के यहाँ दूतखोरी की चाकरी बजाने लगता है और वहाँ भी व्यभिचारों से मुक्त नहीं रहता। आचार्य भगवन् कहते हैं कि बिना ब्रेक की गाड़ी और बिना संयम के जीवन की यही दुर्दशा होती है।

आगे के कथानक में हम देखेंगे कि किसी भी तरीके का वैरभाव किस तरह से भव बिगाड़ता है। बंधुओ! यदि अच्छा आदमी भी निमित्तवश वैरभाव कर लेता है तो उसकी भी दुर्दशा निश्चित है। मुनि विश्वनंदी विहार करते हुए उसी नगर से गुजरते हैं जहाँ चाकर बना उनका चचेरा भाई विशाखनंदी किसी वैश्या के घर की छत पर खड़ा होता है। वे उसे पहचान लेते हैं और उसे संबोधने का यत्न करते हैं लेकिन वह दुष्ट विशाखनंदी तपस्वी विश्वनंदी का मजाक उड़ाता है, उन्हें धक्का मारकर गिरा देता है और निर्लज्जता से कहता है कि कहाँ गया तुम्हारा पेड़ को जड़ से उखाड़ने वाला वह बल? तुम मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। मुनि के मन में थोड़ा क्रोध आ जाता है और उनके मन में वैर की गांठ बंध जाती है। वे मात्र इतना ही कहते हैं कि तुझे इसका फल अवश्य मिलेगा। परिणाम स्वरूप विशाखनंदी का तो पतन होता ही है किन्तु विश्वनंदी का जीव भी पतन के गर्त में गिरने से नहीं बच पाता है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि निमित्त के आगे भी स्वयं को कमजोर मत बनाओ, क्रोध मत करो, वैर मत पालो और परिणामो को कलुषित मत करो।

उनके आगामी भव की कथा कहती है कि सबल होने के बाद भी अहंकार मत करो, नहीं तो नीचे गिरना ही पड़ेगा। कालांतर में भगवान महावीर का जीव त्रिपुष्ट नारायण बनता है उनके चाचा का जीव विजय बलभद्र तथा

विशाखनंदा का जीव अश्वग्रीव नामक पराक्रमी राजा बनता है। अश्वग्रीव और त्रिपृष्ठ राजा के बीच दो वेश्याओं पर अधिकार को लेकर उनमें ठन जाती है, अहंकार आड़े आ जाता है, युद्ध छिड़ता है और अंत में इसमें अश्वग्रीव मारा भी जाता है। लेकिन अहंकार के मद में चूर त्रिपृष्ठ नारायण और विजय बलभद्र अपने अनुचरों के साथ तरह तरह का दुर्व्यवहार करते हैं और नारायण बलभद्र होते हुए भी पतन को प्राप्त होते हैं।

वात्सल्यपूर्ण संबोधन तथा सम्यक् सावधानी धारण करने से पशु पर्याय में भी किस प्रकार मुक्ति का मार्ग मिल जाता है यह भगवान महावीर के अंतिम भव के पूर्व की कथा से सीख सकते हैं। आकाशगामी मुनिराज ने जब एक सिंह को हिरण का वध करते हुए देखा और अवधिज्ञान से जाना कि यह तो तीर्थंकर महावीर का जीव है, तब वे उसे संबोधने हेतु रुके और कहा कि तुम तो भव्य आत्मा हो फिर हिंसा का निकृष्ट काम क्यों कर रहे हो? कहते हैं कि जब होनहार अच्छी होती है तो कोई भी भाषा समझ में आ जाती है। अपने पूर्वभव की दुर्दशा को जानकर उस सिंह की आँखों में आँसू आ जाते हैं, वह निर्मल परिणामों से अणुव्रतों को धारण कर लेता है। अब जंगली प्राणी बिना किसी भय के उसके आसपास आते रहते हैं और उसकी दुष्ट प्राणियों से रक्षा भी करते हैं। सिंह की इस पर्याय में मात्र 18 दिवस की कठोर साधना करके वह अपना भव सुधार लेता है।

बंधुओ! वह सिंह सावधान हो गया इसलिए देव पर्याय में जाकर भी वह भोगों में लिप्त होने की बजाय भगवान के पंचकल्याणक में आने-जाने लगा आत्म-चिंतन में रत रहने लगा। कहते हैं कि अच्छे क्षण पलभर में व्यतीत हो जाते हैं जबकि बुरा पल का समय कठिनता से कटता है। स्वर्ग से चयकर वह जीव प्रियमित्र चक्रवर्ती के रूप में जन्म लेता है, एक दम निराभिमानी एवं अपने वैभव से अनासक्त। क्षेमंकर मुनि से दीक्षा लेकर भव सुधारने की मोक्षयात्रा का पथिक बन जाता है। परमहितैषी आचार्य भगवन् कहते हैं कि भक्ति के साथ वैराग्य और तपस्या मनुष्य भव में ही संभव है देव लोक में नहीं। तपस्या करके देव तो बन सकते हैं लेकिन मोक्ष जाने के लिए मनुष्य भव सम्यक् तप का पुरुषार्थ करना ही पड़ता है। हम भगवान महावीर के चरित्र उनके पूर्वभव के वृत्तांतों से सीख लेकर अपने परिणामों की विशुद्धि को बढ़ायें, आत्म स्वरूप को पहचानें। अहिंसा के पुजारी के निर्वाण महोत्सव पर हिंसा के कारण, प्रदूषण के जनक तथा आरोग्य के दुश्मन इन पटाखों को न चलाएं इस पैसे का सदुपयोग गरीबों व जरूरतमंदों की मदद करने तथा दूसरों को खुशी बाँटने में करें। इन पटाखों का धुँआ तो श्वास वाले मरीज के लिए कई बार मृत्यु का सामान साबित हो जाता है इसलिए इनसे बचें तथा दूसरों को भी बचायें तथा सुयोग्य कार्यों से दीपावली जैसे पावन पर्व की गरिमा को दूषित न होने दें।

आज सन्मति समवशरण में आचार्यश्री के दर्शनार्थ पधारे भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी श्री अमृतभाई पटेल ने गुरुदेव का आशीर्वाद लिया तथा सन्मति एक्सप्रेस पत्रिका का विमोचन किया। आज के दिन मुनिश्री आर्जवनंदी तथा क्षुल्लकश्री विजयंत सागरजी का केशलॉच सम्पन्न हुआ। मुनिचर्या के आवश्यक कार्यों में केशलॉच प्रमुख प्रवृत्ति है जो शरीर से ममत्व हटाने का प्रतीक है जिसे मुनिगण श्रावक समाज के समक्ष इस मार्ग पर बढ़ने हेतु आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसी मंगलभावना के साथ।

## 45

### मन में संवेदना का दीप जलाकर समाज की अमावस को पूर्णिमा में बदलें

भगवान् महावीर के निर्वाण महोत्सव पर मन को मुदित करने वाला निर्वाण लाडू सन्मति समवशरण में चढ़ाया गया। निर्वाण का अर्थ है शूल रहित अवस्था अर्थात् जो कर्मरूपी वाणों की पीड़ा से मुक्त है, शाश्वत सुख का धाम है उसकी कामना करने भावना भाने का महोत्सव है यह दीपावली का त्योहार। परम पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री सुनील सागरजी महाराज ने कहा कि हम परंपरागत रूप से दीपक जलाते आए हैं क्या हमने कभी सोचा है कि यह दीप हमसे क्या कहना चाहता है? दीपावली पर्व को समाज की जड़ता दूर करने से जोड़कर नूतन दृष्टिकोण सामने रखते हुए कहा कि दीपावली तो एक अमावस को प्रकाशमान करता है ज्ञान और प्रकाश के प्रतीक रूप हम प्राणिमात्र के प्रति संवेदनशील बनें तो मानवता खिल उठेगी।

आठों कर्म वाणों का नाश कर प्रभु महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। उन्होंने अपने केवलज्ञान रूपी प्रकाश और मोक्षलक्ष्मी की आभा से कार्तिक की घोर अमावस को भी पूनम बना दिया। हम भी शुद्धात्मा को जानें, विषयासक्ति को त्यागें और आत्मा से परमात्मा बनने का पुरुषार्थ करें। जो आज तुम्हारा वर्तमान है वह कभी वीर प्रभु का भूतकाल था जिसे उन्होंने अपने सम्यक् पुरुषार्थ से परम शुद्धात्मा बना लिया। इस दुनियाँ में आपको कुछ बनने से कोई भी रोक सकता है लेकिन भगवान बनने से कोई नहीं रोक सकता यदि तुम चाहो तो। ज्ञानी अनासक्ति से ममत्व को हटाता है, शुभाशुभ के संयोग से भी दूर रहता है क्योंकि अशुभ तो खराब है ही किन्तु शुभ की मिठास भी जीव के लिए अधिक लाभदायक नहीं है। भेदज्ञान को धारण करके ही कर्मों का समूल नाश किया जा सकता है। पंचकल्याणक

से हमारे जीवन में इसकी कुछ विशिष्टताएं आ जाएं ताकि हम अपनी नजरों में ऊपर उठ सकें।

कार्तिक श्याम अमावस की तिथि अर्थात् भगवान महावीर स्वामी का मोक्ष कल्याण निर्वाण महोत्सव। जिसके प्रतीक रूप में मन को मुदित करने वाला मोदक चढ़ाते हैं तथा वीर प्रभु के समान कर्मवाण रहित निर्वाण की कामना करते हैं। परम उपकारी गुरुदेव कहते हैं कि दीपावली पर हम दीप तो जलाते हैं जो स्वयं को जलाकर जग को प्रकाशित करता है। जबकि आदमी ईर्ष्या की दाह में जलकर हमेशा दूसरों को नुकसान पहुँचाता है। बंधुओ! अमावस की रात तो महीने में एक बार अथवा वर्ष में 12 बार आती है जबकि समाज में गरीबी, भूख, असमानता की स्याह अमावस कब से छाई हुई है इसे दया, करुणा, अहिंसा का दीप जलाकर, मन में संवेदना का दीप जलाकर मिटाने की नितान्त आवश्यकता है। करुणाधारी गुरुदेव कहते हैं कि प्रकाश दो प्रकार का है— भाव प्रकाश और द्रव्य प्रकाश। द्रव्य प्रकाश हमें सूर्य, चन्द्र, तारे बिजली आदि से प्राप्त होता है जिसकी एक मर्यादा है लेकिन भाव प्रकाश अंतरंग का प्रकाश है जो भेदविज्ञान से प्रकट होता है, शाश्वत होता है। यदि आँख न हो चल सकता है किन्तु यदि ज्ञान का प्रकाश जीवन में न हो तो आँखे होते हुए भी घोर अंधकार ही है। आज के दिन गौतम गणधर ने केवलज्ञान रूपी दीपक को प्रकट किया था हम भी अपने जीवन में शुद्धात्म के पुरुषार्थ से ऐसा दीप अपने तथा अपनों के जीवन में जलाए मन से वैर भाव को मिटाए और सभी को गले लगाएं।

गुरुदेव कहते हैं कि आत्मार्थिओ! जीवन को सदगुरु के चरणों में समर्पित कर दो। याद रखो—

**जब बीज समर्पित होता है तो वृक्ष बन जाता है।**

**माटी समर्पित होती है तो दीप बनती है।।**

**बूँद समर्पित होती है तो सागर बनती है।**

**शिष्य समर्पित होता है तो वह दिगंबर संत बनता है।।**

सन्मति समवशरण में आ चुके सभी महानुभावों ने दिगंबरत्व की कठिन साधना का लोहा माना है उससे प्रभावित होकर उन्होंने अपने जीवन को त्याग के पथ पर उन्मुख किया है। दिगंबर साधु भेद विज्ञानी, 5 महाव्रत, 5 समितियों का पालक, पंचेन्द्रियों के निरोधक 28 मूलगुणधारी होते हैं। आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहते हैं कदाचित् एकाध के शिथिल आचरण के चलते इसकी महत्ता को कम नहीं आँका जा सकता ठीक उसी प्रकार जैसे समुद्र में एकाध मछली के सड़ने से सम्पूर्ण सागर का पानी सड़ नहीं जाता। मुनिराज कड़कड़ाती ठंडी में भेदविज्ञान का कंबल ओढ़कर 22 परीषहों को समता से सहन करते हैं। गुरुदेव तपस्वी सम्राट सन्मतिसागरजी महाराज के प्रेरणात्मक प्रसंग के जरिए कहा कि हम अपने

जीवन की ही चाय बना लें इसके लिए अपने अहम को उबालो, चिन्ताओं को भाप बनाकर उड़ा दो, दुख को शक्कर की तरह घुला दो तथा गलतियों को छानकर ऐसी चाय का स्वाद लो कि अन्तरात्मा की रग रग कह उठे कि वाह! क्या स्वाद है?

सुदृढ़मति माताजी ने बहुत ही सुन्दर बात कही कि संगति का जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जैसे पानी तो एक लेकिन संगति के कारण अनेक नामों से जाना जाता है। ऊपर से गिरे तो बारिश, जमकर गिरे तो ओला, नीचे आकर जमे तो बर्फ, सर्प के मुँह में गिरे तो विष, सीप में गिरे तो मोती, आचार्यश्री के चरणों से निकले तो पाद प्रक्षालन और जिनेन्द्र प्रभु के शीश से गिरे तो अभिषेक कहलाता है। गुरुदेव कहते हैं कि कहने को तो आँखें सभी की खुली होती हैं किन्तु बात तब है जब दृष्टि बदल जाए और यह सदगुरु के सानिध्य में ही संभव है।

गर्भ कल्याणक में गर्भ के संस्कारों की उपयोगिता व महत्ता को समझाते हुए गुरुदेव ने कहा कि यदि हम अपने बच्चों को आज्ञाकारी, सुसंस्कृत देखना चाहते हैं तो मांताएं गर्भ में ही अपने बच्चे को वैसे ही संस्कार दें। तीर्थंकर की माता ने अच्छे संस्कार दिए तभी तो उनका बेटा वैराग्य पथ पर चल पड़ा। मां जो संस्कार डालती है उसे बच्चा ता-उम्र सहेजता है। वे हमेशा बने रहते हैं।

## 46

### सकारात्मक विचारों की शक्ति और सुसंगति जीवन के सर्वोत्कर्ष की गांरटी

आत्मकल्याणी गुरुवर आचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज ने कहा कि विचारों की शक्ति, परिणामों की ताकत विशिष्ट होती है उसे पहचानो और उस पर विश्वास करो। प्रभु महावीर स्वामीजी ने कहा है कि हम जैसा सोचते हैं हमारे जीवन में वैसा ही घटित होने लगता है। यदि हम नकारात्मक सोचते हैं तो निश्चित तौर पर हमारे जीवन में परेशानियां ही खड़ी होती हैं और हम कभी खुश नहीं रह सकते। जबकि इसके विपरीत यदि हम विचारों में सकारात्मकता लाते हैं, अच्छा सोचते हैं, बड़ा विचारते हैं तो हम निश्चित रूप से एक दिन जीवन में कुछ अच्छा अवश्य कर जाते हैं जो हमें सफलता के शिखर पर पहुँचा जाता है। यह अपने परिणामों की ही ताकत है। अच्छा सोचें खुद पर भरोसा करें, गुरु वचनों में श्रद्धा व विश्वास रखें गुरु के वचन कभी खाली नहीं जाते उनका आशीष सदैव फलता है और इसके अलावा पुरुषार्थ, साहस व होंसले को दृढ़ बनाए तो दुनियाँ की कोई ताकत आपको अपने मुकाम तक पहुँचने से नहीं

रोक सकती। अच्छा व सकारात्मक सोचने से जीवन की विकटतम समस्याओं का समाधान मिल ही जाता है।

अच्छी सोच अच्छे परिणाम लाए इसके लिए आपकी संगति का उपयुक्त होना जरूरी है। हमारी संगति का प्रभाव हमारी सोच पर, हमारी कार्य प्रणाली पर पड़ता है जो अंततः हमारे परिणामों को प्रभावित करती है। यदि हम निराश, हताश लोगों की संगति करेंगे तो हमारे मन में न तो अच्छे विचार आ सकते हैं और न ही हमारे अन्दर अच्छे विचारों की तरफ बढ़ने का होंसला व प्रेरक बल पैदा हो सकता है। बाह्य वस्तुएँ अर्थात् निमित्त भी हमारे विचारों को प्रभावित किए बिना नहीं रहते हैं। यदि हम रात्रि भोजन का त्याग न करने वाले के साथ रहेगें तो हमारा व्रत संकल्प एक न एक दिन डगमगाने लगेगा। यदि कोई ब्रह्मचारी स्त्रियों के साथ बातचीत आदि संपर्क को बढ़ाएगा तो उसका संयम ना डोल उठे इसकी गारंटी नहीं रहती। इसलिए आचार्य भगवन् कहते हैं कि ऐसे विपरीत प्रकृति वाले निमित्तों से दूर रहकर अच्छे परिणाम बनाने चाहिए ताकि भाव विशुद्धि से जीवन अच्छा बन सके। निमित्त वातावरण का सृजन करते हैं। यदि हम जीवन में आनंद चाहते हैं तो हमें अपने आसपास के वातावरण में आनंद पैदा करना होगा। मिथ्यात्व से बचना है तो मिथ्यात्व के आयतनों से बचना होगा। हमारे भावों में विकार उत्पन्न करने में जीवन में कषाय भी बहुत बड़ा निमित्त बनती है। कषाय वे चोर हैं जो आत्मा के सम्यक्त्व के गुण को चुरा लेती हैं और उसे प्रकट नहीं होने देती। अतः कषाय रूपी कबाड़े को अपने अन्तर्मन से बने उतना पहले से दूर फेंक देना चाहिए।

कारण तथा निमित्त कार्य की प्रकृति व प्रवृत्ति को तय करते हैं। पुरुषार्थ सिद्धिउपाय में कहा गया है कि जैसा कारण होता है, वैसा ही कार्य होता है। मूलतः हम जैसा सोचते हैं वैसा ही व्यवहार हममें प्रकट होने लगता है। सही ढंग से सोचने से बड़े से बड़े काम भी सहज में हो जाते हैं कदाचित् मानवीय कमजोरियों के कारण समय थोड़ा इधर से उधर भले ही हो जाय किन्तु कार्य होकर अवश्य रहता है। हम बार बार एक ही भूल करते हैं कि हमें निमित्त तो समझ में आता है किन्तु भाव अर्थात् सोच अथवा विचार समझ में नहीं आता। इस सोच में अपार शक्ति है जो असंभव को भी संभव बना देती है।

दुनियाँ में सदगुरु का संग और सानिध्य का निमित्त ही एक मात्र ऐसा निमित्त है जो सबका भला चाहता है अन्यथा सभी निमित्त अपनी स्वार्थगत मर्यादाओं के कारण अच्छा नहीं सोच पाते हैं। जैसे डॉक्टर कभी नहीं चाहता उसका मरीज हमेशा के लिए ठीक हो जाय अथवा कोई बीमार ही न पड़े, वकील भी नहीं चाहता है कि समाज लड़ाई-झगड़ा रहित बन जाय और नेता भी नहीं चाहते कि समाज में वैमनस्यता की खाई पट जाय क्योंकि इन सभी को अपनी रोटी इसी से सेंकनी है। एकमात्र निस्पृही करुणा के धारी दिगम्बर मुनिराज ही वे सकारात्मक निमित्त व आशीष रूप

बन पाते हैं जो बिना किसी भेदभाव के सभी का भला चाहते हैं और शरणागत को सही रास्ते पर ले जाते हैं।

सच्चे देव शास्त्र गुरु की शरण में जाने से भावों की शुद्धता बनती है। माना कि देवी-देवताओं के पास काफी शक्तियां हैं जिनकी कृपा से सांसारिक सुखों की पूर्ति के वरदान मिलते हैं। भगवान नेमिनाथ की यक्षणी अम्बिका देवी जिनकी शक्तियों का बखान हरिवंश पुराण में किया गया है। पृथ्वी को उलट-पलट करने तक की सामर्थ्य शक्ति होने के बाबजूद इन देवी-देवताओं की तुलना भगवान से नहीं की जा सकती। मात्र शक्ति के कारण और सांसारिक सुखों की अभिलाषा पूर्ण होने से इन्हें प्रभु समझ लेने की भूल कदापि नहीं करनी चाहिए, यह मिथ्यात्व है क्योंकि जब तक अष्टकर्मों का नाश नहीं किया जाता तब तक कोई भी आत्मा सिद्धालय में अपना स्थान नहीं बना सकती। सिद्धशिला में स्थिति परमशुद्धात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई आत्मा कितनी ही करिश्माई क्यों न हो, भगवान नहीं हो सकती। हे भव्य जीवो! भाव विशुद्धि ही सिद्धालय का रास्ता बन कर हमारे सत-संकल्पों को पूर्ण कर सकती है। आज के मंगलमय दिवस पर यही कामना कि सभी लोग आपस में प्रेम करते हुए मैत्रीयता का भाव बढ़ाएं और जीवन में सकारात्मक विचार व **तदनुरूप** पुरुषार्थ के द्वारा सर्वोत्तम व श्रेष्ठ मुकाम पर पहुँचें।

## 47

### सेवा और प्रेम मोक्ष का मार्ग तथा घृणा व कषाय पतन का धाम

सेवा और प्रेम के रास्ते जब चलते हैं, तो परमात्मा की उपलब्धि होती है।  
घृणा के रास्ते जब चलते हैं, तो पतन की उपलब्धि होती है।।

आचार्य भगवन् श्री सुनीलसागरजी महाराज ने सेवा व प्रेम के मार्ग की महिमा का बखान करते हुए कहा कि सेवा व प्रेम के रास्ते पर चलने से आत्मा के गुण प्रकट होते हैं जो परमात्मा स्वरूप की उपलब्धि कराते हैं। जबकि उसके विपरीत कषायजनित घृणा आदि परिणाम आत्मा के गुणों को ढँक देते हैं, उसके मूल स्वरूप को प्रकट नहीं होने देते और आत्मा के पतन का कारण बनते हैं। क्षमा, विनय आदि गुण आत्मा का निज स्वरूप हैं। इन गुणों के श्रेष्ठ परिणामों से स्वर्ग तो मिलता ही है और परिणामों की विशुद्धि बढ़ाने वाले होने से परमात्मा स्वरूप की उपलब्धि भी कराते हैं। चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से सम्यक्त्व चारित्र का घात होता है। यदि चर्या में चारित्र का पालन तो दिख रहा है किन्तु मन में कषाय है तो भी चारित्र का पतन होता है। सही मायनो में व्रती बनने के लिए और चारित्र को धारण

करने के लिए कषायों को छोड़ना पड़ता है। कषाय आत्मा पर आवरण डाल देती हैं। आत्मा के गुणों को प्रकट नहीं होने देती। लेकिन ये स्थायी नहीं हो सकती। जिस प्रकार घनघोर बादल सूर्य के प्रकाश को ढक देते हैं किन्तु सूर्य का अस्तित्व समाप्त नहीं होता उसी प्रकार आत्मा का मूल स्वभाव तो रहता ही है बस कषाय रूपी बादलों के हटने अथवा विवेक व समता के द्वारा उसे हटाने का ही इंतजार शेष रहता है। मेघों के हटने से सूर्य उसी प्रकार कषायों के हटने से आत्मा देदीप्यमान हो जाती है। 25 कषाय नाना प्रकार से कर्मबंध कराती हैं। इनमें अनंतानुबंधी, प्रत्याख्यान, अप्रत्याख्यान तथा संज्वलन के भेद से कषाय एवं इसके कर्मफल की तीव्रता व मंदता तय होती है। अनंतानुबंधी कषाय तीव्र होती है जिसके क्लिष्ट परिणाम लंबे समय तक जीव के साथ रहते हैं, वैर भाव बना ही रहता है, मन की गांठें खुलने का नाम ही नहीं लेती इसके फलस्वरूप उसके अनंत संसार का बंध होता है। अनंतानुबंधी कषाय दुमुहे सांप की तरह है जो एक तरफ सम्यक् श्रद्धा का घात करती है तथा दूसरी तरफ सम्यक् चारित्र का।

यदि 6 माह के अंदर ही किसी के प्रति कषाय का निराकरण आ जाता है तो वह दूसरे प्रकार की अप्रत्याख्यान कषाय कहलाती है। जब दूसरी प्रकार की कषाय का त्याग करके देशव्रती बन जाते हैं तो इसे मंद कषाय कहा जाता है ऐसी कषाय का निराकरण मन वचन काय से 15 दिन के भीतर आ जाता है।

आसक्ति भी कषाय की उत्पत्ति का कारण है। जब शरीर भी हमारा सगा नहीं है फिर सांसारिक पदार्थों में आसक्ति कैसी? क्रोध मान माया लोभ के द्वारा हम इस आसक्ति की पूर्ति के लिए क्या कुछ नहीं करते? नाना प्रकार से कितने खोटे परिणामों को नहीं बांध लेते हैं? यह आसक्ति सर्वथा त्याज्य है। महाव्रती मुनिराज ज्ञान की दृष्टि रखते हुए शरीर में ममत्व का त्याग कर देते हैं, ममत्व रहित होकर समता भाव से परीषहों को सहन करते हैं। हरिवंश पुराण में श्रीकृष्ण के युवा भाई जो भगवान नेमिनाथ के संबोधन पाकर पलभर में मुनि गजकुमार बन जाते हैं, कल तक आसक्ति के सागर में मस्त थे और आज भाव विशुद्धि के नायक बन अपने होने वाले ससुर के द्वारा किए जा रहे कठिन उपसर्गों को कितनी समता से सहन करते हैं। भेदविज्ञान को समझकर शरीर की तकलीफ को अपना नहीं मानते और परमात्मा स्वरूप को प्राप्त होते हैं। जबकि हम संसारी जरा जरा सी बात पर कषाय पाल लेते हैं, परिणामों को क्लिष्ट विकृत बना लेते हैं। इन कषायों को अंतरंग परिग्रह कहा गया है। आत्मा पर इन विकार रूपी कषायों का कब्जा हो जाता है। उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि भावों के द्वारा परिणाम निर्मल बनते हैं बाह्य परिग्रह का त्याग करने से भी आंतरिक परिणामों में निर्मलता आती है। आन्तरिक परिग्रह घटता है। अंदर-बाहर के प्रति आसक्ति छोड़ने

से निर्मलता बढ़ती जाती है। जब तक आत्मा में मिथ्यात्व की सत्ता है अर्थात् खोटा श्रद्धान है तब तक सम्यक्त्व की उपलब्धि नहीं हो सकती। पेड़ आदि को ही परमात्मा मान लेना मिथ्यात्व ही है। निश्चय नय से वह एकेन्द्रिय जीव है और उसमें परमात्मा स्वरूप आत्मा भी विद्यमान है किन्तु वर्तमान में वह परमात्मा नहीं है।

पुरुषार्थसिद्धिउपाय में आचार्य भगवन् कहते हैं कि यदि हम एक साथ त्याग नहीं कर सकते तो मर्यादा करो, संसार के अमुक हिस्से तक अपनी मर्यादाओं को बांधो। व्रती बनते हो तो बाहर से परिग्रह की मर्यादा करो और अंतरंग में निर्मलता बढ़ाओ। जब भीतर से लोभ छूटता है तब ऐसा संभव होता है। बाहरी जंजाल जितना अधिक रहेगा उतना ही कर्मों के कटने में समय अधिक लगेगा। अनावश्यक को हटाओ ताकि दिमाग उसमें उलझा न रहे। दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़ो तथा मन की सहजता व शांति को प्राप्त हो। साधु भगवन्तों ने दुनियाँ को त्यागा है लेकिन दुनियाँ का कल्याण नहीं त्यागा, इसीलिए सभी के मंगल के लिए उपदेश देते हैं और सदैव सभी के मंगल की कामना करते हैं।

## 48

### मर्यादापूर्ण जीवन ही मस्तीभरा आनंदमय जीवन

परमपूज्य चर्याचक्रवर्ती आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज कहते हैं कि जीवन में व्रत, संयम की मर्यादाएं अनिवार्य हैं। निरंकुश जीवन कभी आनंद का कारण नहीं बन सकता। निरंकुशता व स्वच्छंदता की आंधी में पल भर में सबकुछ उजड़ जाता है। हमारे प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदीजी उन गृहस्थों के लिए प्रेरणा रूप हैं जो प्रायः यह कहकर मर्यादाओं के पालन से पल्ला झाड़ लेते हैं कि बाहर रहकर हम इन मर्यादाओं का पालन करने में मजबूर हैं। मोदीजी को देखो जो विदेश में रहकर भी अपने व्रत संकल्प का ध्यान रख सकते हैं और उनके पालन में कोई कोताही नहीं बरतते।

व्रतों की मर्यादा में एक अलग प्रकार की मस्ती है, एक अल्हड़पन है, बालसुलभ सहजता है। संयम और शील की मस्ती भी कुछ ऐसी ही है जो हमें विकारों से परे रखकर हमारे चरित्र को अंदर और बाहर से उज्ज्वल बनाती है। इस मस्ती में खोट की कोई जगह नहीं।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन मस्ती भरा था जंगल में भी मर्यादा का दामन था, आनंद से सोया करते थे। भगवान महावीर स्वामी जी ने भी 12 वर्ष के तपस्वी काल में इसी फकीरी भरी मस्ती का आनंद लिया। लक्ष्मण ने भाभी सीता की रक्षा के लिए मर्यादा रेखा खींची थी और हम सभी जानते हैं कि उस रेखा के लांघने पर क्या हुआ? कदाचित् सीताजी

के सामने तो अतिथि सत्कार, अतिथि इच्छा पूर्ण करने की संस्कृति का प्रश्न रहा होगा तभी उन्हें लक्ष्मण रेखा की मर्यादा के बाहर पैर रखना पड़ा होगा लेकिन एक बार मर्यादा टूटने का परिणाम कितना भयंकर हुआ। आज तो हम तथा कथित मस्ती मजाक में जिस तरह व्रत शील की मर्यादा को बिना कुछ विचार किए दांव पर लगा देते हैं, आधुनिकता के नाम पर सरेआम धज्जियां उड़ाते हैं, ऐसे में आध्यात्मिक रूप से पतन के गहरे गर्त में गिरते ही हैं साथ ही इस सांसारिक जीवन में लज्जा व शर्म के पात्र बन जाते हैं, कई दफा तो स्थिति इतनी विकराल बन जाती है कि हताशा, आत्महत्या तथा अन्य धिनोने अपराध पलभर में पनप जाते हैं।

परम उपकारी पूर्वाचार्य श्रीअमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि मर्यादा की रक्षा के लिए जीवन में सत्याणुव्रत, अहिंसाणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत तथा अपरिग्रहाणुव्रत का पालन अनिवार्य है और इनमें वृद्धि करने के लिए 3 गुणव्रत अर्थात् दिशाओं की मर्यादा, क्षेत्र की मर्यादा होना भी जीवन में जरूरी है। जिस प्रकार नगर की रक्षा के लिए कोट (मोटी दीवाल) बनाई जाती है, गहरी खाई खोदी जाती है ठीक उसी प्रकार व्रत, शील व संयम की मर्यादाएँ जीवन की आत्म स्वरूप की रक्षा करती हैं। यदि हम इन मर्यादाओं का पालन करते हैं तो इसके बाहर के क्षेत्र का हमें पाप नहीं लगता।

आचार्य भगवन् सावधान करते हैं कि यदि अहिंसाणुव्रत का पालन करना है तो अहिंसक लोगों के साथ रहो। ब्रह्मचर्य एक महान गुण है यह लाइन ऑफ कन्ट्रोल की तरह है लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि यह नियंत्रण रेखा बड़ी तेजी से हमारे बीच से गायब होती जा रही है। बंधुओं! यदि ब्रह्मचर्य की सुरक्षा करनी है तो महिलाओं के स्थान पर रमने से, बैठने से बचो, विकथाओं से बचो, गरिष्ठ व विकार बढ़ाने वाले आहार से बचो, पूर्व के रतिस्मरण से बचो, शरीर के श्रंगार का लोभ त्यागो क्योंकि इनसे मन की चंचलता उत्पन्न होती है। इन मर्यादाओं के टूटने पर आध्यात्मिक पतन तो निश्चित तौर पर होता ही है किन्तु सामाजिक व्यवस्था को छिन्न भिन्न होने से भी नहीं बचाया जा सकता। पारिवारिक रिश्तों में खटास, छल-कपट आदि कषाय भी पनपते देर नहीं लगती।

आचार्य भगवन् उदाहरण देकर समझाते हैं कि सुमेरु जैसा विशाल पर्वत भी अपनी मर्यादा रखता है, आकाश की विशालता के बावजूद उसकी अपनी मर्यादा है, सागर अथाह गहराई के बाद भी अपनी मर्यादा नहीं लांघता। आज यदि सुनामी आदि आते भी हैं तो वह मनुष्य के द्वारा मर्यादा लांघने का दुष्परिणाम है। हमें भी माता-पिता व गुरुजनों की आज्ञा मानते हुए जीवन को मर्यादा में बाँधकर मनुजता के गुणों से स्वयं को सुशोभित करना चाहिए और स्वयं को अमर्यादित जीवन के खतरों से बचाते हुए अपनी

सांस्कृतिक धरोहर का पोषण करना चाहिए। यह मर्यादा धर्म की, सदाचार की, अहिंसा की और शाकाहार की है जिसके पालन से हम अपने जीवन को सुन्दर, संयमित और अलमस्त बना सकते हैं। आज मस्ती का जो अर्थ लिया जाता है उसमें निरंकुशता, स्वच्छंदता से अधिक कुछ भी नहीं है जिसमें पग पग पर खतरे और फरेब हैं। इसलिए जीवन में अणुव्रत और गुणव्रतों की मर्यादा धारण कर जीवन को सार्थक बनाएं।

## 49

### पर पीड़ा को समझने वाला ही सच्चा वैष्णवजन वैष्णवजन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाणे रे...

गांधीजी का प्रिय भजन जो प्रेम और अहिंसा का सच्चा संदेश देता है। गांधी जयन्ती नजदीक है इसलिए इस प्रासंगिक उद्बोधन में आचार्य गुरुदेव श्री सुनील सागरजी महाराज ने कहा कि इस भजन में दया है, दूसरों के प्रति करुणा है और अहिंसा है जो जीवन का सार है। विगत वर्षों से महात्मा गांधीजी के जन्म दिन को विश्व अहिंसा दिवस के रूप में मनाया जा रहा है। उन्होंने सत्य और अहिंसा को अपने जीवन में व्रत, यम—नियम के रूप में इस प्रकार अपना लिया था कि गांधी और ये दोनों शब्द उनका जीवन, जीने की आस्था और मकसद तथा श्रद्धा के रूप में परस्पर पर्यायवाची बन गए थे।

सही मायनों में वे लोग ही धर्मात्मा कहलाने के अधिकारी हैं जिनके मन में दया है, दूसरे लिए मन में पीड़ा है, जो दूसरों की तकलीफ को समझते हैं, किसी को दुख नहीं पहुँचाते अपितु दूसरों के दुख दूर करते हैं। इतिहास साक्षी है कि परन्तु बहुत कम लोग ही ऐसे होते हैं जिनमें दया का भाव होता है अन्यथा अधिकांश लोग धर्मात्मा कहलाते हुए भी धर्म के नाम पर पाखण्ड को ही बढ़ावा देते हैं। स्वार्थी और जिह्वा के लोलुपी धर्म के नाम पर यज्ञ, बलि के नाम पर जीवों का वध कराकर भोलेभाले लोगों को छलते रहते हैं। सोचो! भला ऐसे कौन से देवी देवता होंगे जो अपनी ही सृष्टि में रहने वाले जीवों का प्राण हरण करके प्रसन्न होंगे? आज से लगभग 1000 वर्ष पूर्व आचार्य अमृतचन्द्रजी ने पुरुषार्थ सिद्धि उपाय में कहा था कि उस समय में बहुधा लोगों के मध्य कई मिथ्या भ्रांतिया फैलाई जा रही थीं जैसे कि उपद्रवी को मारने में कोई पाप नहीं है, सुखी व्यक्ति को मार देने से अथवा समाधिस्थ व्यक्ति को मार देने से उसकी वही अवस्था हमेशा के लिए बनी रहेगी और मारने वाले को स्वर्ग मिलेगा आदि। कभी धर्म के नाम पर, चमत्कार के नाम पर तो कभी हाथ की सफाई के नाम पर ठगी का यह खोटा खेल चल रहा था, उस समय प्रभु महावीर ने दृढ़ता के साथ अहिंसा

का दामन पकड़ा, क्रांतिदूत बनकर हिंसा का पुरजोर विरोध किया और लोगों को समझाया कि अहिंसा ही परम धर्म है। बाल गंगाधर तिलक ने कहा था कि यदि महावीर नहीं होते तो देश में अहिंसा का दबदबा नहीं होता। हमें मन, वचन, काय से हिंसादिक प्रवृत्तियों से दूर रहना चाहिए।

किसी भी रूप में मांस आदि हिंसादि पदार्थों दान नहीं किया जा सकता। वास्तव में दान तो 4 ही हैं— औषध दान, शास्त्र दान, अभय दान और आहार दान जो विविध प्रकार के पात्र, जरूरमंद प्राणियों की मदद करता है और उन्हें सुख की अनुभूति कराता है। गृहस्थ धर्म निभाते हुए एकेन्द्रिय स्थावर जीवों की मर्यादित प्रमाण में विराधना तो क्षम्य हो सकती है किन्तु पंचेन्द्रिय जीवों का घात किसी भी परिस्थिति में, किसी भी प्रकार के कुतर्क के नाम पर, किसी भी परंपरा के नाम पर नहीं होना चाहिए। राष्ट्रवासियों को संबोधित करते हुए आचार्यश्री ने कहा कि गांधीजी के वैष्णवजन का संदेश तभी प्रासंगिक बन सकता है जब हम सभी विवेक पूर्वक हिंसा का त्याग करें, सभी जीवों से प्रेम करें और समझें कि सभी हमारे समान ही प्राण है, सभी हमारे समान ही सुख-दुख का अनुभव करते हैं। प्रवचन के आरंभ में श्री आर्षमती माताजी ने कहा कि पर्युषण पर्व बहुत ही उत्साह के साथ सम्पन्न हो गए लेकिन संयम की पालना के पथ में यह उत्साह कम नहीं पड़ना चाहिए अपितु दिन दूना रात चौगुना बढ़ते रहना चाहिए। उन्होंने अकलंक-निकलंक के कथानक के माध्यम से धर्म के प्रति श्रद्धा व समर्पण की प्रेरणा दी।

## 50

### सल्लेखना-समाधिमरण ही अहिंसक एवं श्रेष्ठ

**क्षुल्लक श्री सार्थकसागरजी की संलेखना समाधि पर विशेष**

सौ जन्मों का पुण्य होता है, तब मानव जन्म मिलता है।  
हजार जन्मों का पुण्य होता है, तब भारत जैसे देश में जन्म मिलता है।।  
लाखों जन्मों का पुण्य होता है, तब जैन धर्म एवं उत्तम कुल मिलता है।  
और जब भवों भवों का पुण्य होता है, तब समाधिमरण मिलता है।

28 अक्टूबर, 2018 गांधीनगर जन समुदाय और जैन समाज पूज्य गुरुवर की समाधिमरण चिकित्सा का अदभुत नजारा महसूस कर रहा था जब क्षुल्लक श्री सार्थक सागरजी का पार्थव शरीर आचार्यश्री की पावन निश्रा तथा संघ सानिध्य में साबरमती नदी के किनारे आगम सम्मत पूर्ण विधि विधान के साथ पंचतत्त्व में विलीन हो रहा था। 3कि.मी. की लंबी इस पदयात्रा में गांधीनगर के प्रथम पुरुष मेयर श्री प्रवीण भाई पटेल सम्पूर्ण विधि पूर्ण होने

तक वहीं पर गुरु चरणों में रहे। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि गांधीनगर की जनता को श्री सार्थक सागरजी महाराज के जीवन से सीख लेनी चाहिए और अपने जीवन को इस तरह अर्थपूर्ण तथा सफल बनाना चाहिए। समाधिमरण भगवान महावीर स्वामीजी का बताया हुआ वह मार्ग है जो मरण को भी उत्सव बना देता है।

संघस्थ मुनि श्री सार्थक सागरजी के 83 दिवस की कठोर सल्लेखना— साधना के पश्चात् 27 अक्टूबर को समाधिमरण पूर्वक इस नश्वर शरीर त्याग करने के पावन प्रसंग पर परम उपकारी आचार्य गुरुवर श्री सुनीलसागरजी महाराज ने अपने ओजपूर्ण उद्बोधन में कहा कि वे मनुष्य सौभाग्यशाली हैं जिन्हें मनुष्य जन्म मिला, अणुव्रती एवं महाव्रती बनने का सौभाग्य मिला तथा उनका जीवन तो स्वर्ण कलश से महिमामंडित और आरोहित ही हो गया जिन्हें जीवन में समाधिमरण का अवसर मिला। नाथूजी जो दीक्षा के पश्चात् सार्थक सागर बने उन्हें गृहस्थावस्था में विषेले कीड़े ने काट लिया था, जहर फैलते जाने से हीरानन्दानी जैसे मुंबई के बड़े होस्पिटल ने हाथ पैर कटने का ऑपरेशन करने पर भी जीवन की संभावना व्यक्त नहीं की। तब इस श्रेष्ठी ने अर्धबेहोशी की हालत में आई. सी. यू. में भर्ती होने की बजाय संकेत के द्वारा अपने परिवारीजनों से गुरुचरणों में रहकर अपने शेष जीवन को समर्पित करने की इच्छा जतायी ताकि भव सुधर सके। सभी ओर से निराश परिवार आखिर उन्हें उनकी इच्छा के अनुरूप 6 अगस्त को गांधीनगर में गुरुचरणों में लाया गया। गुरुदेव ने उन्हें क्षुल्लक दीक्षा दी व्रत अंगीकार कराए और उन्होंने उसी दिन से सल्लेखना धारण की। चमत्कार ही था कि बिना कुछ खाए वे 32वें उपवास के दिन प्रवचन सभा में आकर बोले कि उन्होंने अपने जीवन काल में कभी निराहार नहीं रहे और आज गुरु सानिध्य में रहकर अपूर्व शांति का अनुभव कर रहे हैं। सतत अपनी भाव विशुद्धि बढ़ाते हुए, विकारों का पूर्ण शमन कर, सांसारिक वस्तुओं और शरीर से ममत्व को घटाकर आचार्य भगवन् और मुनिजनों के सानिध्य में आत्मबोध को प्राप्त किया और सल्लेखना समाधिके द्वारा पूरे होशोवास में आत्म चिन्तन करते हुए मृत्यु से भयभीत हुए बिना इस नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। गुरुदेव ने कहा समाज के लिए इनके जीवन का अंत को सुधार लेने का आदर्श अनुकरणीय है। इस दौरान उनका पुत्र व पुत्री उनकी एवं मुनिसंघ की वैयावृत्ति में अंत तक रहे श्रद्धा भाव से सेवा तथा धर्म साधना में मदद की। पारस और भरत उनके दो बेटे इस पावन पुनीत कार्य में तन मन धन से पूर्ण समर्पण के साथ भक्तिभाव से संलग्न रहे और सही मायनों में पितृऋण को अदा कर सके। गुरुदेव ने कहा कि बेटा हो तो ऐसा जो अपने पिता को अस्पताल में सड़ने के लिए छोड़ने की बजाय उत्तम समाधि मरण करवाता है और पूरी भावना के साथ इस दिशा में स्वयं को समर्पित कर देता है।

समाधिमरण जैन दर्शन में श्रेष्ठ है जिसे वीरप्रभु की परंपरा में व्रत के रूप में स्वीकार किया गया तो कुछ आचार्यों ने इसे शिक्षा व्रत में शामिल किया तो कुछ ने अलग से पंडित मरण की तरह अभिव्यक्त किया। आचार्य अमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि समाधिमरण 1000 साल से भी पुराना चिन्तन है। यह सल्लेखना समाधि व्रत आत्मा के गुणों को अगले भव में ले जाने वाला है। एक बार के भावपूर्वक समाधिमरण से बार बार का मरण और भव भ्रमण समाप्त हो जाता है।

अरे! इस शरीर का क्या भरोसा? सांस वापस आयी या न आयी। दुनियाँ जन्म दिन मनाकर खुश होती है किन्तु ज्ञानी यही विचार करता है कि इतना वक्त तो चला गया बाकी के समय को तो अब आत्मसाधना में लगा लें फिर कब करेंगे? अंत समय में सल्लेखना समाधिमरण धारण करना ही चाहिए किन्तु हर रोज भी जीवन में ये भावना अवश्य भानी चाहिए कि मेरा मरण समाधिमरण ही हो मैं अपने प्रभु को याद करते हुए, अपनी आत्मा का चिन्तन करते हुए ममत्व व विकारी भावों का त्याग कर इस नश्वर देह को छोड़ूँ और मरते समय मेरे परिणाम न बिगड़े। इस भावना का यह दैनिक पूर्वाभ्यास निश्चित ही आपकी गति सुधार सकता है। ऐसी भावना भाने वाले मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

गुरुदेव ने बहुचर्चित विषय समाधिमरण बनाम आत्महत्या पर अपने विचार रखते हुए इस प्रश्न का उत्तर दिया कि क्या समाधिमरण आत्मघात या आत्महत्या है? गुरुदेव आगम सम्मत विधान और तर्क विज्ञान के आधार पर स्पष्ट करते हैं कि इन दोनों की तुलना नहीं की जा सकती क्योंकि कोई भी व्यक्ति भय, राग-द्वेष, हताशा, तनाव, इच्छा, आकांक्षाओं की पूर्ति के अभाव में ही आत्महत्या करता है जबकि समाधिमरण को धारण करने वाला व्यक्ति मृत्यु को निश्चित जान कषाय, विकारों को नष्ट करने के लिए पुरुषार्थ करने हेतु प्रभु चरणों में समर्पित हो जाता है, प्रभुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ बन जाता है। होश हवाश में यदि शरीर छूट जाय तो वह है समाधि और होश खोकर, कषाय के वशीभूत होकर शरीर छूटने की क्रिया है आत्महत्या। आत्महत्या करने वाले व्यक्ति को अपनी अपनी जिम्मेदारी का भी बोध नहीं रहता है फंदा लगा लिया, जहर खा लिया और क्लुषित परिणामों के साथ मर गए। गांधीनगर की जनता के सामने जीवंत उदाहरण है सार्थक सागरजी महाराज का जिनके कषायादिक विकार छूट गये थे। उनके स्वभाव की सरलता और मन की शांति व आंतरिक प्रफुल्लता उनके चेहरे से झलकती थी। यह था सल्लेखनायुत समाधिमरण का तेज। श्रीमद्भगवत गीता शरीर छोड़ने की क्रिया को पुराने वस्त्र से अधिक नहीं मानती और योगीजनों से विवेकपूर्वक शरीर का ममत्व हटाने को निर्देशित करती है फिर भी जग मृत्यु से सबसे अधिक भयभीत है।

परम उपकारी गुरुदेव कहते हैं कि सल्लेखना समाधिमरण में पूर्णरूप अहिंसाव्रत का पालन होता है जो आत्महत्या में कतई संभव नहीं है। समाधिमरण में व्यक्ति क्रोध, मान माया लोभ आदि कषायों को छोड़ता है, क्षमा भाव धारण करता है, वैर भाव छोड़ने की भावना भाता है इसलिए इसमें भावहिंसा होने की कोई गुंजाइश ही नहीं रहती, 12 व्रतों के अतिचार नहीं लगते और 5 महाव्रत तथा 7 शीलव्रतों के साथ समाधिमरण करने से मोक्षरूपी लक्ष्मी अवश्य वरण करती है, चतुर्थ काल हो तो उसी भव से मोक्ष हो जाता है। नहीं तो उच्च स्वर्गों में देव अवश्य बनते हैं, लौकान्तिक देव भी बनते हैं और निकट भव में मोक्ष को प्राप्त होते हैं। इसीलिए हे भव्य जीवो! जीवन सुधारो श्रावकाचार से और मरण सुधारो समाधिमरण से।

## 51

### प्राकृत भाषा के आगम ग्रंथों में की गई अहिंसा, सदाचार और शाकाहार की पहल राष्ट्र की सुख-शांति के लिए अनिवार्य

प्राकृत भाषा पर त्रि दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में विशेष प्रवचन

छोटी सी जिंदगी बड़े बड़े अरमान।  
पूरे हो ना पायेंगे, निकल जायेंगे प्राण।।

प्राकृताचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज ने त्रि-दिवसीय राष्ट्रीय प्राकृत संगोष्ठी के समापन सत्र में प्राकृत ग्रंथों की उपादेयता के संदर्भ में कहा कि आचार्य कुन्दकुन्द तथा अनेक पूर्वाचार्यों के प्राकृत ग्रंथों में सार रूप में आत्मकल्याण हेतु एवं संयमी जीवन जीने हेतु अहिंसा, सदाचार और शाकाहार की जो पहल की गई है वह जीवन में उतारने, आत्मसात् करने योग्य है तथा पर्यावरण संतुलन, सर्व के कल्याण के लिए अनिवार्य है। हिंसात्मक साधनों और प्रवृत्तियों को प्रश्रय देकर किसी राष्ट्र का भला कदापि नहीं हो सकता। वैश्विक जीवन शैली का वर्तमान विकास का सिद्धांत Survival of Fittest अर्थात् जिसमें दम होगी वही जीयेगा आधुनिक युग में भौतिकवादिता का पूर्ण समर्थक होकर भी विश्व शांति की स्थापना में निष्फल सिद्ध हो रहा है। हर शेर के लिए एक सवा शेर तैयार बैठा है। कोई भी स्वयं को लंबे समय तक सुरक्षित भयमुक्त महसूस नहीं कर पाता है। जबकि भगवान महावीर का सिद्धांत Live and Let Live "जिओ और जीने दो" दया करुणा और मानवीयता का अटल प्रहरी बना हुआ है। इसकी शाश्वत उपयोगिता को किसी भी काल में चुनौती नहीं दी जा सकती। इसमें

सभी का विकास है, सभी की सुरक्षा है, सभी का जीवन है, अमय है। जिस शांति समृद्धि के मार्ग की तलाश में विश्व पगलाया है वह भौतिकवादिता में नहीं अपितु अणुव्रती का मर्यादापूर्ण जीवन जीने में है। विकास वह है जो मनुष्य के मन में प्राणिमात्र के प्रति संवेदना विकसित कर सके। खुशी साधनों में नहीं साधना में है। परम पूज्य आचार्य वट्टकेरजी कहते हैं कि हे भव्य आत्माओ अपने मन से राग-द्वेष को खत्म करो, आत्मबंधन की सांकल को तोड़ दो और निज स्वरूप को प्राप्त हो जाओ। एक भी घड़ी संयम के बिना मत जाने दो। रहट की तरह चलने वाले इस जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होने के लिए 12 व्रतों का अतिचार रहित पालन हेतु पुरुषार्थ करो और जीवन की गति इधर-उधर भटकाने के बजाय लक्ष्य की ओर उन्मुख करो।

प्राकृत ज्ञानकेशरी आचार्य श्री सुनील सागरजी महाराज की 14 से अधिक प्राकृत कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें से कई एक कृतियां विभिन्न विश्वविद्यालयों के प्राकृत भाषा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हैं, प्राकृत भाषा पर इतना अधिकार रखने वाले तथा जनकल्याणी विषयों के साथ उसे जन जन तक ले जाने वाले परम कृपालु आचार्य भगवन् ने अपने उद्बोधन में कहा कि यह संगोष्ठी निश्चित रूप से सफल हुई जिसमें राष्ट्रीय स्तर के 40 से भी अधिक विद्वानों ने प्राकृत भाषा के विविध आयामों पर बहुत पुरुषार्थयुक्त विवेचन प्रस्तुत किया। इसमें लीक से अलग हटकर कुछ नये प्रयोग भी रखे गए जो प्राकृत भाषा को विशाल फलक प्रदान करने में उसे जन जन की भाषा के रूप में पुनः प्रस्थापित करने में मील का पत्थर साबित होंगे। जैन आगम का अधिकांश प्रामाणिक साहित्य प्राकृत भाषा में ही प्राप्त है इसलिए इस भाषा का ज्ञान हर साधक व जिज्ञासु को होना आवश्यक है ताकि वह कृति के मूल स्वरूप को उसी रूप में समझ सके। निःसंदेह प्राकृत एक प्राचीन भाषा है जिसमें जैन आगम के महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना तो हुई ही है इसके अलावा अन्य धर्म व संस्कृति ग्रंथों का लेखन भी प्राकृत भाषा में हुआ है। प्राकृत भाषा में प्रकृति के समान ही स्वाभाविकता का प्रकटीकरण होता है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रंथों समयसार, प्रवचनसार, अष्टपाहुड आदि प्राकृत भाषा में रचे गए जिनमें आत्मस्वरूप का बहुत ही सुन्दर विवेचन मिलता है। प्राचीन समय के जैनेतर नाटकों में भी प्राकृत भाषा का अस्तित्व था जो कालान्तर में संस्कृत में रूपान्तरित हुआ। संस्कृत भाषा के प्रभाव के कारण तत्कालीन समय में प्राकृत भाषा के व्याकरण को संस्कृत के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। उल्लेखनीय है कि आचार्य सुनील सागरजी की कृति प्राकृत व्याकरण बोध कृति हिन्दी से प्राकृत सीखने की एक प्रभावशाली रचना है जो हर पाठक को प्राकृत सीखने में सहज लगती है। आधुनिक समय में प्राकृत भाषा को संस्कृत की छाया भले कही जाती हो लेकिन इससे प्राकृत भाषा की प्राचीनता को चुनौती नहीं दी जा सकती।

संगोष्ठी के मुख्य अतिथि श्री सुरेन्द्र पोखरनाजी ने डार्विन के विकासवाद सिद्धांत की आलोचना की और भगवान महावीर के अहिंसात्मक पथ को ही जीवन का मार्ग बताया और कहा इस संसार में सभी प्राणी सुख चाहते हैं, जीवन चाहते हैं जो वीतरागी प्रभु द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलकर प्राप्त हो सकता है। त्रस स्थावर हरेक के अन्दर समान चेतना अथवा आत्म स्वरूप है, विज्ञान भी आज इसे स्वीकार करने को विवश है। पर्यावरण असंतुलन इस तथ्य के अनुरूप जीवनशैली के न होने के कारण ही है। यदि सभी मर्यादाओं को जीवन में अपनाकर सहअस्तित्व की अवधारणा पर अमल करते हैं तो जीवन अर्थात् विकास के वास्तविक स्वरूप को हांसिल किया जा सकता है। सारस्वत अतिथि प्रो. पारसमलजी जैन अग्रवाल जो भौतिक विज्ञानी हैं किन्तु प्राकृत साहित्य के भी विद्वान हैं, ने कहा कि प्राकृत सिद्धांतों का मानव जीवन पर अत्यन्त उपकार है। समयसार आदि की गाथाओं में समय प्रबंधन का जो सटीक विश्लेषण मिलता है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। प्राकृत भाषा के विद्वान प्रो. प्रेम सुमन जैन ने जोर देते हुए कहा कि इस भाषा के माध्यम से ज्ञान के मूल स्वरूप तक पहुँचना एवं इसे जन जन की भाषा बनाना वर्तमान की महती आवश्यकता है। संगोष्ठी संयोजक प्रो जिनेन्द्र जैन, उदयपुर, प्रो. धर्मचन्द्र जैन, जोधपुर, प्रो. कल्पना जैन, दिल्ली, डॉ कमल जैन, पूना, डॉ आशीष जैन, गढाकोटा, डॉ. मनीषा जैन, लाडनू के साथ करीब 50 विद्वानों ने विविध विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये।

गुरुदेव आचार्य सुनीलसागरजी कहते हैं कि भाषकीय द्वेष और विवाद व्यर्थ है हमें हर भाषा का सम्मान करना ही चाहिए। ज्ञान किसी भी भाषा-लिपि से लिया जा सकता है। आदि जिनेश्वर द्वारा प्रतिपादित ब्राह्मी और शारदा लिपि अत्यन्त प्रचीन तथा व्याकरण की दृष्टि से अति उन्नत हैं जिन्हें सीखने हेतु सुबुद्ध श्रावकों को आगे आना चाहिए। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि भाषा किस लिपि में लिखी गई है अपितु उसका तत्त्व अधिक महत्वपूर्ण है जो जीवन को सुधारता है। संस्कृत मीठी भाषा है तो प्राकृत मधुर। वे छिछले लोग ही हैं जो भाषा की राजनीति करते हैं। एक उदाहरण देकर गुरुदेव ने कहा कि किसी टंकी के निकलने वाला पानी टंकी से नहीं आता अपितु उसके स्रोत टैंक से आता है। यदि हम टंकी की जगह बदलकर अन्यत्र पानी निकल आने की अपेक्षा करेंगे तो वह व्यर्थ का पुरुषार्थ होगा क्योंकि न तो पानी पाइप से आता है और न ही टंकी से। इसी क्रम में हमें किसी विवाद में पड़े बिना तत्त्व के मूल स्वरूप को समझना होगा और उसके लिए मूल भाषा को सीखने समझने की जरूरत होगी ताकि भ्रमपूर्ण स्थितियां न बनें।

## 52

## अणुव्रतों के अतिचार व्यक्ति समाज व राष्ट्र के आरोग्य के लिए घातक

चतुर्थपट्टाधीश आचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज ने कहा कि अणुव्रतों का पालन व्यक्ति, सामाज्य व राष्ट्र के हित में अनिवार्य है। इनके पालन में लापरवाही न वरतें अन्यथा वर्तमान व भविष्य दोनों ही दांव पर लग सकते हैं। जैन आगम प्रणीत जीवनशैली में एक श्रावक श्रेष्ठी के लिए 12 व्रतों अर्थात् 5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत और 4 शिक्षाव्रतों का पालन अपरिहार्य माना गया है ताकि सभी का समान रूप से विकास हो सके, किसी के हितों की हानि न हो, प्राणों की हानि न हो, लोगों के मन में क्लेश, विषाद, असंतोष न हो अपितु सभी के लिए प्रेम, मैत्री, करुणा व दया हो। सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह व्रत का पालन सम्पूर्ण रूप से तो महाव्रती मुनिराज ही कर पाते हैं किन्तु श्रावक अणुव्रतों के रूप में इनका ईमानदारी, निष्ठा व दृढ़ संकल्प से पालन कर शाश्वत सुख की अनुभूति कर सकता है, स्वयं का व दूसरों का जीवन सुखमय बना सकता है। अणुव्रत का अर्थ है गृहस्थ धर्म अर्थात् कर्तव्यों के निर्वाह हेतु इनके पालन की मर्यादा सीमा तय करना और अन्यान्य तरीके से इसके उल्लंघन का प्रयास न करना।

उदाहरण के लिए सांसारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए हिंसादि पापों से पूर्ण रूप से नहीं बचा जा सकता किन्तु इसका एक उचित परिमाण अवश्य किया जा सकता है। सम्पूर्ण उपलब्ध का भोग तो हम नहीं कर सकते, सम्पूर्ण आवश्यकता भी हमें अपनी जरूरतों की संतुष्टि हेतु नहीं है फिर हम संयम और विवेक के साथ इनकी सीमा को तय करे और किसी भी परिस्थिति में इनसे डिगें नहीं। हमारी मर्यादा दूसरों के लिए वस्तु की उपलब्धता सुनिश्चित करती है। इस तरह से हम कुछ न करते हुए भी दूसरों का भला कर देते हैं। प्रभु महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति मर्यादा का भेदविज्ञान समझकर इनके पालन में संकल्प शक्ति को जीवन में स्थान देता है वही स्वाभाविक रूप से प्रसन्न रह सकता है तथा दूसरों की भी प्रसन्नता का कारण बन सकता है।

जैन दर्शन में वर्णित इन 5 अणुव्रतों के 5-5 अतिचारों को आचार्य भगवन् सरल भाषा में उदाहरण सहित समझाते हुए कहते हैं कि पहले सत्याणुव्रत के अतिचार इस प्रकार हैं— ऐसा सत्य नहीं बोलना जिससे किसी के प्राणों का घात होता हो, किसी का घर बर्बाद होता हो, किसी का अनावश्यक नुकसान होता हो। सत्याणुव्रती किसी के प्राणों का घात नहीं करता, किसी की धनहानि नहीं इच्छता, किसी का व्यापार बंद हो जाय ऐसा सत्य भी प्रकट नहीं

करता।, किसी को मिथ्या उपदेश नहीं देता, किसी को रास्ता नहीं भटकाता, दूसरों की गूढ़ अर्थात् रहस्यमय बातों को उजागर नहीं करता, कूटलेख क्रिया अर्थात् झूठी लिखापढ़ी नहीं करता, न्यासापहार में चूक नहीं करता अर्थात् यदि किसी ने कोई धन रखा है तो उसको अन्यान्य कारणों से, सामने वाले को याद न रहने से छिपाता नहीं है। आज हमारी मानसिकता इतनी विकृत हो गई है कि शाकभाजी अथवा पानीपूड़ी बेचने वाले जैसे छोटे व्यक्ति को भी मौका पड़ने पर छलने से नहीं चूकते और कुतर्क करते हैं कि हमने थोड़े ही उससे अधिक मांगा अपितु वह भूला तो हमने रख लिया। साकारमंत्रभेद सत्याणुव्रत का आखिरी अतिचार है कि अनायास किसी की पोल खोल देना ताकि वह बर्बाद हो जाए उसे नीचा देखना पड़े।

अहिंसाणुव्रत मानवता का पाठ पढ़ाता है, दया और करुणा का मार्ग सुझाता है। एक गृहस्थ के जीवन में बुनियादी जरूरतों के पूरा करते समय आरम्भी हिंसा हो सकती है, व्यापार आदि में उद्योगी हिंसा हो सकती है, सुरक्षा आदि की दृष्टि से विरोधी हिंसा भी हो सकती है किन्तु उसे ऐसी संकल्पी हिंसा से बचना होगा जिसमें उसका कोई हित निहित नहीं है। अहिंसाव्रत के अतिचारों में पशुओं पर, अपने मातहतों पर यहाँ तक कि आपके अपनों पर उनकी क्षमता से अधिक भार डाल देना, टेंशन देना, अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए पशुओं का छेदन-भेदन करना, ताड़न के लिए अन्न-पानी का निरोध कर देना आदि अहिंसाणुव्रत के अतिचार हैं। आचार्य भगवन् कहते हैं आदमी शैतान अथवा राक्षस भी होता है जिसके मन में तनिक भी दया भाव नहीं है जो न दया का भाव समझता है और न ही किसी पर दया करता है। दूसरी श्रेणी में वे आदमी आते हैं जो जानवर की तरह हैं जो दया को समझते तो हैं किन्तु लोभ व स्वार्थ के वशीभूत उस पर अमल नहीं कर पाते। जबकि तीसरा आदमी संवेदना सहित होता है जिसमें दयाभाव की समझ होती है, वह सामने वाले में स्वयं के समान जीव समझता है तथा उसी करुणा के साथ विनय से, मानवीयता से उसकी रक्षा के यथोचित पुरुषार्थ के लिए तैयार रहता है।

अचौर्याणुव्रत के 5 अतिचार हैं— प्रतिरूपक व्यवहार अर्थात् मिलावटी माल मिलाकर देना, स्तेन प्रयोग अर्थात् स्वयं तो चोरी नहीं करना किन्तु दूसरों को चोरी के तरीके बताना, राज्यविरोधातिक्रम— जिस व्यापार पर राज्य ने प्रतिबंध लगाया है, ऐसा व्यापार करना, तदाह्वता आदान— अर्थात् चोरी का माल खरीदना तथा हीनाधिक मानोन्मान— कम-अधिक माप-तौल करना। इस तरह से कमाया हुआ धना चोरी का धन है। आजकल लोग इन अतिचारों के द्वारा इतना पापाचार करते हैं कि रस में विष मिलाते हैं, दूध में भी जहरीले रसायन मिलाते हैं, लोग मरते हों तो मरे लेकिन उनको क्या? यहाँ तक कि घी आदि शाकाहारी पदार्थों में चर्बी आदि मिलाकर धर्मभ्रष्ट होते हैं।

यदि हम ब्रह्म स्वरूप की उपलब्धि चाहते हैं तो ब्रह्मचर्याणुव्रत भी जीवन में अनिवार्य है। हमारी परिवार व्यवस्था, विवाह प्रथा, शील-सम्मत व्यवस्था एवं सम्य संस्कृति का अद्भुत उदाहरण रही हैं जिसे आधुनिकता, स्वतंत्रता सह स्वच्छन्दता के नाम पर तार तार किया जा रहा है इससे समाज में अनैतिक दूषण ही नहीं अपितु बलात्कार, हत्या जैसे अपराध भी तेजी से बढ़ रहे हैं। ब्रह्मचर्याणुव्रती श्रावक स्वयं की पत्नी अथवा पति के सिवाय अन्य किसी की कामना नहीं करता जिससे समाज स्वच्छ एवं स्वस्थ रहता है। तीव्र कामना, अनंगक्रीडा, अपरिग्रहीत वैश्या आदि के साथ कामुक दृष्टि से व्यवहार, उसके साथ उठना बैठना, काम वासना बढ़ाने वाला साहित्य आदि पढ़ना आदि इसके अतिचार हैं। जैन संस्कृति में सेठ सुदर्शन, महासती सीता, अंजना, चंदना आदि शील की आदर्श विभूतियां रही हैं।

अंतिम परिग्रह परिमाण अणुव्रत के अतीचार हैं— अपनी निर्धारित परिग्रह की सीमाओं का उल्लंघन करना, जरूरत से अधिक सीमा तय कर लेना। जिस प्रकार जरूरत से ज्यादा खाने पर अजीर्ण हो जाता है ठीक उसी प्रकार जरूरत से अधिक धन सम्मति रखने पर कई तरह के दूषण पनपते हैं जो संगति को बिगाड़ देते हैं, श्रावकाचार से दूर कर देते हैं और गति को बिगाड़ देते हैं। एक जगह बहुत ही सुन्दर वाक्य लिखा था कि यदि आपके पास नहीं है तो यहाँ से अपनी जरूरत के मुताबिक ले जाओ और जरूरत से अधिक है तो यहाँ रख जाओ। यदि सभी जगह ऐसा हो जाए तो संभवतः गरीबी व अभाव की स्थितियां समाज में न रहें।

हम व्रत तो ले लेते हैं किन्तु अज्ञानवश उसमें दोष लगा लेते हैं। व्रतों के पालन में सम्यग्दर्शन अनिवार्य है। इसके अभाव में व्रत पालन करने पर भी मोक्ष की उपलब्धि नहीं हो सकती। सम्यग्दर्शन का अर्थ है 7 तत्त्वों की अनुभूति, उनमें सच्चा श्रद्धान तथा भेदविज्ञान। जिनेन्द्र देव द्वारा कहे हुए वचनों में शंका करना, प्रभु स्तवन में आकांक्षाएं रखना, मुनिजनों के शरीर की व्याधि को देखकर घृणा करना, खोटे लोगों की स्तुति प्रशंसा करना आदि सम्यग्दर्शन के अतिचार हैं। इनसे बचना चाहिए।

आचार्य भगवन् तर्क के साथ समझाते हैं कि हो सकता है कि जो जिनवाणी में कहा है वैसा हम नहीं देख पाते हों, अनुभव नहीं कर पाते हों किन्तु यह हमारी बुद्धि व ग्रहणशक्ति की अल्पज्ञता, मर्यादा हो। इसलिए जिन वचनों में शंका करना अतिचार है। व्रत, पूजा, अर्चना आदि भक्ति के लिए, आत्मकल्याण के लिए है, इसके पीछे मांगने की आकांक्षा नहीं होनी चाहिए तभी भाव विशुद्धि बढ़ती है जो मोक्ष की प्राप्ति में सहायक है। इसी प्रकार विविकित्सा की बात भी कर सकते हैं। शरीर की विकारी स्थिति से कैसी घृणा। हमें घृणा त्याग कर साधर्मि की सेवा— वैयावृत्ति करनी चाहिए। खोटा स्तवन आत्मविश्वास

को घटाता है इसलिए वीतरागी के सिवाय अन्य किसी में श्रद्धान नहीं करना चाहिए। दोष न लगे इसके लिए हमें अपनी संगति पर ध्यान देना होगा।

## 53

### जो आसक्ति है, वही परिग्रह है

परमपूज्य आचार्य भगवन् श्री सुनीलसागरजी महाराज ने आज श्रावकों के कल्याण हेतु परिग्रह के प्रति आसक्ति के भेदविज्ञान का उपदेश देते हुए इस दलदल से निकलने का सरल, सहज रास्ता दिखाते हुए कहा कि भगवान महावीर स्वामी की देशना में धर्म को दो रूपों में स्वीकार किया गया है— एक है श्रमण मार्ग तथा दूसरा है श्रावक मार्ग। जो श्रमण मार्ग को स्वीकार करते हैं वे महाव्रतों को धारण करते हुए, शुद्धात्म से उसका आचरण करते हुए आत्म विशुद्धि के द्वारा मोक्ष मार्ग की ओर निरंतर बढ़ते जाते हैं, वे वीतरागी मुनि साधक हैं। दूसरा जो श्रावक मार्ग है उसमें एक श्रावक अणुव्रतों का पालन करते हुए श्रमण द्वारा बताए गए आत्मकल्याणकारी मार्ग की भावना भाता है कि किसी दिन उसके जीवन में भी ऐसा सुअवसर आ जाए।

आचार्य गुरुवर कहते हैं कि सौभाग्यशाली हैं वे लोग, जो अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत तथा अपरिग्रहाणुव्रत का पालन करते हैं। वे भेदविज्ञानी होने से सम्यक् ज्ञानी भी हैं और सदाचारी भी हैं। हे भव्य जीवो! थोड़ा सा चारित्र पालन भी भव पार कराने वाला होता है। जैन आगम के एक महान ग्रंथ नियमसार में कहा है कि द्रव्य के अनुसार भाव होना चाहिए और भाव के अनुसार द्रव्य होना चाहिए। यदि आत्मा के भीतर वीरागता, निर्मलता नहीं बढ़ी तो सब निरर्थक है। यदि भीतर वीरागता है तो वह बाह्य में भी प्रकट होती ही है। परिग्रह से लगाव कम हुआ तो बाहर में संग्रहवृत्ति कम ही दिखती है।

परमपूज्य अमृतचंद्राचार्यजी कहते हैं कि जो मूर्च्छाति है, वही परिग्रह है। मोह के उदय से मूर्च्छा आती है। प्रश्न ये नहीं है कि किसी के परिग्रह है अथवा नहीं। परिग्रह न होने पर भी कोई व्यक्ति आसक्ति के चलते परिग्रही हो सकता है और परिग्रह होते हुए भी अनासक्ति के कारण अपरिग्रही भी हो सकता है। मान लीजिए कि कोई भिखारी निर्धन हैं और उसके पास परिधान पहनने के लिए पूर्ण वस्त्र भी नहीं है फिर भी वह अपेक्षा एवं आसक्ति की दृष्टि से परिग्रही हो सकता है। यही आसक्ति ही तो मूर्च्छा है जो भाव विशुद्धि में, आत्म शुद्धि की राह में बाधक बनती है। भरत चक्रवर्ती के पास 6 खंड का राज्य था किन्तु उन्हें परिग्रह के प्रति जरा सी भी आसक्ति नहीं थी इसलिए वे घर में रहकर भी वैरागी कहे जाते थे। आचार्य भगवन् कहते हैं कि एक साधु भी परिग्रही है यदि उसके अन्दर क्रोधादि कषाय विद्यमान रहती है।

एक छोटा बच्चा जिसके मुँह में लड्डू रखा हुआ है उसकी माँ पूँछती है कि बेटा क्या तुमने लड्डू खाया? बेटा कहता है कि नहीं माँ अभी नहीं खाया। वैसे ही जिनके परिग्रह दिख रहा है और वे बोलें कि वह मेरा नहीं है। यह तो कोई बात नहीं हुई। इस भ्रमजाल से बाहर निकलने में बुद्धिमानी है।

अपरिग्रहाणुव्रत के पालन का अर्थ है कि जितना जरूरी हो उतना ही परिग्रह रखें बाकी के संकल्प-विकल्प का मन वचन काय से त्याग करें। इससे अन्य अणुव्रतों का पालन में भी सहजता का अनुभव होने लगता है। इसीलिए भव्यजनो! यदि जीवन को सुखी बनाना है तो जीवन के हर पल में अणुव्रतों का पालन अवश्य करते रहो। हे आत्मारथी सज्जनो! देखो, यदि कोई मेहमान घर पर आता है, बैठता है और उससे आप कुछ नहीं बोलते हैं तो वह अपने आप उठकर चला जाता है। उसी प्रकार जो कर्म आ रहे हैं उन्हें आने दो, उनकी ओर देखो मत तो वे कर्म अपने आप चला जायेंगे। इस भेद विज्ञान को अपने मन में बिठालो उसमें उलझो मत, सुलझने के लिए पर्याय बनी हुई है।

## 54

### अणुब्रम से नहीं, अणुव्रत से होगी विश्व शांति

परमपूज्य आचार्य भगवन् श्री सुनीलसागरजी महाराज ने विश्वशांति का गुरुमंत्र देते हुए कहा कि अणुब्रम बनाने से नहीं बल्कि देशवासियों को अणुव्रती बनाने से सुख, शांति व समृद्धि आयेगी। मकान की ऊँचाई बढ़ा लेने से कोई आदमी बड़ा नहीं हो जाता है, शरीर की ऊँचाई बढ़ा लेने से भी आदमी बड़ा नहीं होता है और न ही पैसे का ढेर लगा देने से तथा गाड़ी आदि खरीद लेने से आदमी ऊँचा होता है अपितु वह महान होता है अपने संस्कार से, सदाचार से और अपने सुविचार से।

सज्जनो! जीवन के विकास के लिए, संस्कृति के उत्थान के लिए तथा समाज के नैतिक विकास के लिए अहिंसा का पालन करना अनिवार्य है। आज दुनियाँ में परिग्रह की उपलब्धता को पुण्य का फल व संयोग मानते हैं। जिसके पास गाड़ी पैसा बंगला आदि बढ़ जाता है तो उसे बड़ा ही पुण्यात्मा कहा जाता है। परन्तु वास्तव में इस परिग्रह में आसक्ति से, आरंभ आदि के कारण से दुर्गति का ही बंध होता है। यदि नेतागिरी करते करते, व्यापार की कुर्सी पर बैठे बैठे मर गए तो अच्छी गति का बंध नहीं होता इसलिए हर सद्ग्रहस्थ को चाहिए कि वह घर गृहस्थी की जिम्मेदारी पूरी करते हुए समय रहते सुपुत्रों पर इसकी जिम्मेदारी छोड़कर धर्मध्यान में लग जाना चाहिए। पहले के राजा महाराजा भी ऐसा ही करते थे, वे युवराज को गद्दी देकर स्वयं निवृत्त हो जाते थे और यदि वे घर में भी रहते थे तो भी वैरागी की तरह ही रहते थे। उनके जीवन से सीख

लेकर हमें अपने जीवन को सुन्दर बनाना चाहिए। हे भव्यजनो! सौभाग्य से यदि मनुष्य पर्याय मिली है तो हर एक पल का उपयोग आत्मकल्याण हेतु करो, इससे अनंत पापों का नाश होता है। जिस तरह एक किसान एक बीज की अच्छी तरह देखभाल करता है उस बीज को अच्छी जमीन में बो कर मनचाहे फल प्राप्त करता है उसी तरह हमें इस मनुष्य जन्म का उपयोग एवं जतन करना चाहिए और मोक्ष मार्ग पर बढ़ना चाहिए। हमें अपने जीवन को गैर जरूरी परिग्रह में फँसाकर नहीं रहना चाहिए। परिग्रह का मतलब है कि जिसकी हमें जरूरत नहीं है उसे भी इकट्ठा करना, जो हमारा नहीं है अथवा जिसे हम प्राप्त नहीं कर सकते उसे एकत्र करने के आर्तध्यान में लगे रहना और इसी राग-द्वेष के व्यापार में ज़िदगी समाप्त कर लेना। हे आत्मार्थियो! समझो जो आपका है वह कहीं भी जाने वाला नहीं और जो चला गया वह हमारा था ही नहीं, यह निश्चित तौर पर मान लेना चाहिए तथा इसके लिए संताप शोक नहीं करना चाहिए हताशा के आगोश में नहीं डूबना चाहिए। इस तरह का परिग्रह आन्तरिक परिग्रह है जो दिखता नहीं है किन्तु इसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। इस परिग्रह के लिए आज जो आपाधापी हो रही है, हिंसादि उपकरणों का सहारा लिया जा रहा है, उसकी परिणति क्या होती है यह हमें भली भांति समझ लेना चाहिए। देश के महान वैज्ञानिक एवं राष्ट्रपति अब्दुल कलाम आजाद ने भी कहा था कि विश्व शांति अणुबम से नहीं अणुव्रत से आयेगी। इसलिए हमें समय रहते समझ जाना चाहिए, संभल जाना चाहिए और परिग्रह के संग्रह हेतु हिंसादि पाप प्रवृत्तियों से बचते रहना चाहिए।

## 55

### अनर्थदण्ड से बचो और सार्थकता के लिए करो अहिंसक पुरुषार्थ

पर्वत चढ़ने में मेहनत लगती है, ढलान उतरने में नहीं।

पुण्य के लिए पुरुषार्थ करना पड़ता है पाप के लिए नहीं।।

सार्थकता की सिद्धि के लिए पुरुषार्थ करना पड़ता है, निरर्थक प्रवृत्तियों के लिए नहीं।

गीत गाने के लिए अभ्यास करना होता है, गाली देने के लिए नहीं।।

परम पूज्य आचार्य श्री सुनीलसागरजी महाराज ने सुखी, सहज एवं समृद्ध जीवन के रहस्य को उद्घाटित करते हुए कहा कि जीवन में अनावश्यक व व्यर्थ की चीजें तो अपने आप आ जाती हैं, बुराइयां बिना किसी मेहनत के पनप जाती हैं जबकि शुभ के लिए, ऊपर उठने के लिए विवेक को जागृत करना पड़ता है। अशुभ को सोचने, करने में देर कहाँ लगती है किन्तु अच्छी दिशा तय करने के लिए नियोजित परिश्रम करना होता है।

आज सन्मति समवशरण में युवा मुनिराज श्री मुदितसागरजी एवं आर्यिका माताजी का केशलॉच प्रवचन के समय चल रहा था। शरीर से ममत्व को हटाते हुए जिस प्रकार मुनि आर्यिका अपने हाथों से केशलॉच कर रहे थे उससे उत्तम त्याग की अनुभूति समस्त वातावरण में हो रही थी। आचार्य भगवन् ने कहा कि साधु बनना तो सरल है किन्तु अपने हाथों से केशलॉच करना कठिन। इसमें विवेकपूर्ण आचरण करने से, भाव विशुद्धि बढ़ाने से सहजता आ जाती है। भावों के आवागमन, पतन—उत्थान एवं उसके परिणामों से जुड़ी अंगारक स्वर्णकार की कथा के माध्यम से आर्यिका सूत्रमति माताजी ने भाव परिवर्तन की स्थिति को समझाया। गुरुदेव ने कहा इस कथा में अंगारक को शुभ भावों की प्राप्ति हेतु चारण ऋद्धिधारी मुनि ज्ञान सागरजी के दर्शन, आहार आदि के निमित्त का पुरुषार्थ करना पड़ा किन्तु आहार के पश्चात् घर से कीमती रत्न के चोरी होने जाने पर मुनि के प्रति शंका उत्पन्न करने वाले खराब भावों के लिए कोई परिश्रम नहीं करना पड़ा वे तो स्वतः उत्पन्न हो गए थे। उसके द्वारा ध्यानस्थ मुनि पर फेंका गया डंडा जब पेड़ पर बैठे मोर को लगा और उसके कंठ से निगला हुआ मोती निकलकर जमीन पर आ पड़ा तब उसे अपनी कुत्सितवृत्ति व सोच पर पश्चात्ताप हुआ और वह उन्हीं मुनि से दीक्षित हो गया। इस घटनाक्रम में समुचित विवेक के उपयोग की कमी थी।

आचार्य अमृतचंद्राचार्यजी कहते हैं कि अणुव्रत धारण करो, गुणव्रतों का पालन करो और व्यर्थ के अनर्थदण्ड अपध्यान, पापोपदेश, प्रमादचर्या, हिंसादान तथा दुश्चुति से दूर रहो। राग—द्वेषके वशीभूत होकर खोटा ध्यान मत करो, किसी को ऐसा उपदेश मत दो जिसके परिणाम स्वरूप हिंसा होती हो, प्रमाद व लोभ के वशीभूत होकर अविवेकपूर्ण, मनमाना व्यवहार मत करो अपने आचरण पर अंकुश रखो, हिंसादि उपकरण का दान कदापि न करो अर्थात् जिनके उपयोग से हिंसा आदि की संभावना हो जैसे तलवार, छुरी, विष आदि के दान से दूर रहो। यदि कोई उपकरण सदाचरण और दुराचरण दोनों में ही उपयोग में आता हो तो भी विवेक रखते हुए तय करो कि वह व्यक्ति उसे किस प्रकार उपयोग करने वाला है। उन पदार्थों का भी दान मत करो जिनके निर्माण में हिंसा निहित है। आचार्य भगवन् तो यहाँ तक कहते हैं कि साधु संतों को भी ऐसी सामग्री अथवा उपकरण दान में नहीं देने चाहिए जिनसे उनके परिणाम भटकते हों अथवा उनकी साधना में विघ्न उत्पन्न होता हो। किसी को उपयोग के लिए अपना वाहन आदि देने से पहले सुनिश्चित कर लो कि उसके कार्य का उद्देश्य क्या है? बिना काम के, ऐसे ही अथवा व्यसन, मस्ती आदि के लिए वाहन देने से उसके चलने पर जो हिंसा होती है उसके पाप में आप भी भागीदार बन जाते हैं। अनर्थदण्ड का अंतिम स्वरूप है— दुश्चुति अर्थात् ऐसे साहित्य से, दृश्य—श्राव्य साधन सामग्री से दूरी बनाए रखना अथवा उसका दानदि नहीं करना जिससे मन में विकार पनपते हैं जिनके परिणाम स्वरूप व्यसन आदि पनपते हैं। जुआ, सट्टा आदि प्रवृत्तियाँ भी त्याज्य हैं क्योंकि इसमें मिलता भले ही छप्पर फाड़ के

हो किन्तु जब जाता है तो चमड़ी चीर के ले जाता है। ब्याज के लोभ में बैंक में लंबे समय तक जो पैसा जमा रखते हैं उसका ब्याज जब मिलेगा तब मिलेगा किन्तु उस पैसे का सदुपयोग अथवा दुरुपयोग इस दरम्यान जहाँ भी होगा उसका फल आपको अवश्य मिलेगा। हे भव्य आत्माओ! समझो! अपने भावों का बिगड़ना ही भव का बिगड़ना है इसलिए ऐसे निमित्तों व साधनों से बचो। बिगड़ने में देर नहीं लगती, संवरने में हाथ से समय निकल जाता है। इसलिए जीवन को अहिंसामय बनाने हेतु अणुव्रतों व गुणव्रतों को अपनाएं। जो अनर्थदंड हो गया है उसका प्रायश्चित्त लें, जो हो रहा है उसे रोकें उस पर लगाम कसें तथा भविष्य में न करने का संकल्प लें। आज तीव्र स्पीड की जिंदगी ने इन गुणों का बहुत नुकसान किया है। बिना ब्रेक की तेज रफ्तार में दौड़ने वाली गाड़ी का क्या हश्र हो सकता है इससे सभी वाकिफ ही हैं इसलिए अपने जीवन पर व्यवहार पर संयम और विवेक की लगाम रखते हुए अपने जीवन को मंगलमय बनाएं।

## 56

### सामाजिक सद्भाव के विकास से हो सकता है गिरनार का सर्वसम्पति से समाधान

आचार्य गुरुवर श्री सुनील सागरजी महाराज की पावन निश्रा में गुजरात के मुख्यमंत्री श्री विजयभाई रूपाणीजी ने गिरनार की समस्या का सर्वसम्पति से समाधान का दिया आश्वासन

गांधीनगर दिगम्बर जैन समाज के मानस्तंभ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के दरम्यान गुजरात राज्य के मुख्यमंत्री श्री विजयभाई रूपाणी जी आचार्यश्री सुनील सागर जी महाराज सा. के दर्शनार्थ पधारे। इस सभा में जैन समाज ने ऐसे संवेदनशील, जीवदया प्रेमी मुख्यमंत्री को राजश्री की उपाधि से नवाजा। आदरणीय मुख्यमंत्री श्री रूपाणीजी ने गुरुदेव को श्रद्धापूर्वक नमन करते हुए उन्हें राष्ट्र गौरव संत का सम्मान प्रदान किया और कहा कि दिगंबर जैन संतों की तपस्या अत्यन्त कठोर है। ऐसे साधक अपने अनुशासित आदर्श आचरण से समाज व राष्ट्र की समस्याओं का व्यवहारिक समाधान उपस्थित करते हैं। यदि उनकी तरह देश सत्य अहिंसा आदि अणुव्रतों को ईमानदारी से जीवन में अपना ले तो गरीबी, बेकारी, भुखमरी व असमानता जैसी समस्याएं नगण्य रह जायेंगी। उन्होंने कहा कि राज्य में आगमन से एवं चातुर्मास दरम्यान प्रसरती धर्मदेशना से यहाँ के वातावरण में सकारात्मक ऊर्जा बढ़ी है एवं गुजरात की धरा धन्य हुई है।

गुरुदेव ने चातुर्मास के पश्चात् अपने संघ के गिरनार विहार की बात करते हुए प्रसंगवश मुख्यमंत्रीजी से कहा कि हालांकि यह आपके राज्य की व्यवस्था का प्रश्न है तथापि सामाजिक सदभाव के मद्देनजर गिरनार की वर्तमान समस्या का हल शोधना आवश्यक है तथा जिसे पारस्परिक समझ व संवाद के साथ आसानी से लाया जा सकता है। बशर्ते अहम् व कार्य करने की अनिच्छा शक्ति आड़े न आए। ज्ञातव्य है कि गिरनार से श्रीकृष्णजी के चचेरे भाई 22वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ गिरनार की 5वीं टोंक से मोक्ष पधारे। यह ऐतिहासिक तथ्य है फिर भी यह मुद्दा काफी समय से विवादों में घिरा हुआ है। इसका समाधान आना चाहिए। उन्होंने मुख्यमंत्री जी से कहा कि सर्वसम्मति से इस विवाद का सम्मानजनक हल संभव है। यह जरूरी है कि इस परम पावन तीर्थ पर सभी लोग प्रेम से सहिष्णुता से अपने भावों के अनुसार पर्वतराज की वंदना करें, ध्यान आराधना करें। वहाँ का वातावरण भयमुक्त हो हिसांदि घटनाएं न हो, वैर-वैमनस्यता का वातावरण न रहे और सभी इस स्थल पर अपनी अपनी धर्मारधना कर सकें। माननीय मुख्यमंत्री श्री विजयभाई रूपाणी जी ने आचार्य भगवन् से सहमत होते हुए आश्वासन दिया कि इस समस्या का शांतिपूर्ण व सम्मानजनक हल निकालने हेतु यथासंभव यथायोग्य प्रयास किए जायेंगे ताकि किसी भी समुदाय की धार्मिक भावनाएं व आस्थाएं आहत न हों। समस्त जैन समुदाय ने करतल ध्वनि के साथ माननीय मुख्यमंत्री में विश्वास व्यक्त करते हुए उनका आभार व्यक्त किया।

आचार्यश्री के गिरनार की तरफ विहार का यह दूसरा पड़ाव श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक केन्द्र कोबा है जहाँ आनन्द के साथ अष्टान्हिका पर्व तो मनाया ही जा रहा है। यहाँ आचार्यश्री सुनीलसागरजी एवं आश्रम के संचालक प.पू. आत्मानन्दजी की पावन निश्रा में समस्त साधकों एवं धर्मानुरागी श्रावकों में आध्यात्मिक साधना का उत्कृष्ट वातावरण बना हुआ है जिसमें सुबह व दोपहर पश्चात् के प्रवचनों में पूर्वाचार्य आचार्यश्री कुन्द कुन्दजी की महत्वपूर्ण कल्याणकारी कृति समयसार पर चिन्तन, मनन, चर्चा व देशना की अविरल निर्मलधारा बह रही है।

## 57

### जो पर को दुःख दे, सुख माने, उसे पतित मानो

धर्म अहिंसा परमो धर्म ही सच्चा जानो  
जो पर को दुःख दे सुख माने उसे पतित मानो।।

सज्जनों! अहिंसा ही परम धर्म है। जो धारण किया जाता है वह धर्म है, इसीलिए धर्म इस जीव का स्वभाव है। गर्भित वचन बोलने से, खोटे शब्द बोलने से, कषायसहित वचन बोलने से और अप्रिय वचन बोलने से जीव दुखी हो

जायेगा। इन तीनों प्रकार के वचन बोलने से अच्छे दोस्त भी दुश्मन बन जाते हैं। हास्य से भरे हुए वचन नहीं बोलिए। किसी के साथ हँसना बुरा नहीं है किन्तु किसी के ऊपर हँसना बुरा है, विनोद से बोलना बुरा नहीं अपितु झूठ बोलकर, परिहास करते हुए बोलकर हँसना गलत है, मर्मभेदी गलत वचन बोलना, असमंजस भरे वाक्य बोलना, कर्कश बोलना यदि ऐसा सत्य भी हो तो भी ऐसा सत्य नहीं बोलना चाहिए। चुगली हम तब करते हैं जब हम दूसरे को छोटा दिखाना चाहते हैं। चुगली से अच्छे खासे परिवार, अच्छे रिश्ते भी बिगड़ जाते हैं। सावध्य व्यापार करने से भी पाप का बंध होता है। गलत तरीके से हिंसा करके व्यापार करते हो, चमड़े का व्यापार करते हो और कहते हो कि हमने क्या किया। ऊपर से माल आया और ऊपर से ही चला गया। भइया! जैसा आया और जैसा चला गया वैसा ही कर्म बंध भी होगा और वैसा ही फल भी मिलेगा।

अरति करने वाले दो लोगों का जिनका आपस में अच्छा व्यवहार है, उनके बीच घृणा पैदा करने वाले वचन कह देना, भयकारी वचन कह देना जैसे— साथ में रहते हो कोई बात नहीं पर उनसे बचकर रहना, खेदकारी वचन, वैर बंध हो जाये ऐसे वचन कहना, दूसरों को त्रास, परेशानी हो ऐसे वचन ज्ञानी को कदापि नहीं बोलने चाहिए। प्रायः बिना सावधानी के ही ऐसे वचन बोले जाते हैं।

क्रोध मान माया लोभ कषाय सहित सारे के सारे वचन हिंसा ही हैं, समाज के लिए, देश के लिए और धर्म के लिए घातक ही हैं। इन सब झूठों का मूल प्रमाद ही है। प्रमाद से बचना है तो हिंसा से बचो और यदि हिंसा से वचना है तो झूठ से बचो। हम विवेकपूर्वक आलस्ययुक्त वचनों का त्याग करना सीखें। भोगोपभोग संबंधित, परिवार संबंधित झूठे वचन बोलने पड़ते हैं वह एक बार अणुव्रती श्रावक के लिए चल भी जायेगा पर जिस किसी बात से लेना देना नहीं हो ऐसे बड़े बड़े झूठ का हमें त्याग करना चाहिए। ज्ञानियो! जिससे किसी का अहित हो ऐसे सब असत्याओं का मन वचन काय से त्याग करने में ही जीवन की भलाई है। जीवन सत्य हो, सत्य स्वरूप की पहचान हो और भेदविज्ञान पूर्वक जीवन हो ऐसी मंगलमय भावना।

## 58

### मुनियों का विहार एक सहज एवं शाश्वत प्रक्रिया है।

आचार्यश्री सुनील सागरजी महाराज का विहार गांधीनगर से गिरनार की ओर हुआ तो उपस्थित श्रद्धालुओं ने आचार्यप्रवर को नम आंखों से विदाई दी। उपस्थित जनशैलाब अपनी आंखों पर नियंत्रण नहीं कर पाया।

आज आचार्य भगवन् का ससंघ मंगल विहार श्रीमद् राजचंद्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र, कोबा को हुआ। मुनियों का विहार एक सहज एवं शाश्वत प्रक्रिया है। कहा जाता है कि रमता जोगी और बहता पानी ही श्रेष्ठ

होता है किन्तु धर्मपिपासु इस नगरी की प्रजा अश्रुपूरित है इस घड़ी में। अच्छा समय कब, कहाँ और कैसे गुजर गया पता ही नहीं चला। गुरुवर आपका विहार नियति की तरह है जिसे रोका नहीं जा सकता किन्तु हम आपसे लिए गए संकल्पों का पालन करके आपकी उपस्थिति का अहसास अपने पास कर सकें। हे करुणाकर! हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें, हमारी प्रज्ञा अक्षुण्ण बनी रहे, खुशी में होश और दुःख में जोश कायम रहे ऐसे मंगल आशीर्वाद की कामना आपसे गांधीनगर की समस्त प्रजा करती है।

## 59

### श्रीमद् राजचन्द्रजी की आँखों में झलकती थी वीतरागता

गांधीनगर सेक्टर-1 से विहार कर प्रातः श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र, कोबा पहुँचे आचार्यश्री के संघ का केन्द्र के ट्रस्टियों, पदाधिकारियों, साधकों एवं कार्यकर्ताओं ने भावभीना स्वागत किया। ब्र. सुरेश भईयाजी ने आचार्य भगवान का परिचय देते हुए कहा कि आप वीतरागी, शांत, निर्मल, निर्ग्रन्थ एवं दिगंबर संत हैं जिनकी संयम तप, त्याग, साधना की अनूठी मिशाल हैं इस पंचम काल में भी चतुर्थ काल जैसी चर्या है, सम्यक् प्रज्ञा व आचरण का अद्भुत संगम है तथा जिनमें मोक्षमार्ग के सभी पहलू एक साथ प्रकट होते हैं।

अपने अध्ययन काल के स्वर्णिम अतीत में झांकते हुए गुरुदेव राष्ट्र गौरव संत आचार्यश्री सुनीलसागरजी महाराज ने श्रीमद् राजचन्द्रजी द्वारा लिखित सर्वार्थसिद्धिउपाय की टीका में उनके व्यक्तित्व व कृतित्व का वखान करते हुए कहा कि उनकी तस्वीर में ही उनकी वीतरागता व शांत मुद्रा झलकती है। इस आश्रम में प्रवेश द्वार से लेकर अंदर कई प्रमुख जगहों पर अंकित प्रेरक कल्याणी मंत्र— “मैं आत्मा हूँ, आपका सेवक हूँ, सबका मित्र हूँ” का विशद विश्लेषण करते हुए कहा कि यदि हमें अपना उद्धार करना है तो स्व को जानें, देह और आत्मा के भेदविज्ञान को समझें तथा श्रीमद् राजचन्द्रजी की तरह आन्तरिक सुदृढ़ता, आत्ममुक्ति के लिए चिन्तन करें। बाह्यचिन्तन हितकारी नहीं होता। पंचपरमेष्ठी ही सद्गुरु हैं उनकी शरण लें। जो साधक पूर्ण स्वतंत्रता की साधना अर्थात् मोक्ष प्राप्ति की यात्रा पर निकल पड़ा है उसे साधनों की परतंत्रता नहीं सुहाती, इसीलिए दिगंबर मुनि सभी बाह्याडम्बरों से मुक्त होते हैं। श्रीमदजी गांधीजी के भी आध्यात्मिक गुरु थे। गांधीजी के जीवन से उनके असहयोग आंदोलन से शिक्षा ली जा सकती है कि शारीरिक अर्थात् पंचेन्द्रियों के विषय तथा मन के विकारों के साथ असहयोग करना सीख जाएं तो स्व स्वरूप के

नजदीक जाया जा सकता है। स्व स्वरूप हमारा अपना घर है और यह लोकोक्ति एकदम सही है कि हम अपने घर में ही अधिक शक्तिशाली होते हैं। इसके लिए हमें अपने ज्ञायक स्वभाव के प्रति समर्पण को बढ़ाना है, सम्यक् श्रद्धान को दृढ़ करना है। कल से दिगंबर जैन समुदाय के अष्टान्हिका पर्व प्रारंभ आचार्य श्री सुनीलसागरजी सभवतः अष्टान्हिका पर्व के पश्चात् ससंघ आगे विहार करेंगे।

## स्तुति

### भारदी-थुदी

( 108 प्राकृताचार्य आचार्य श्रीसुनीलसागरजी गुरुदेव कृत )

जयदु भारदी, जयदु भारदी—2

जिणवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी—2

जयदु भारदी..... जयदु भारदी.....

अर्थ—जिनवाणी, शारदा, श्रुतदेवी तथा सरस्वती आदि नामों से युक्त भारती जयवन्त हो।

वीरमुह णिग्गदा, गोदमादि गंधिदा,

सुदसूरी भासिदा, गुणधरादि विरइदा,

कुंदकुंद— भारदी, सुदधरादि धारदी

जिणवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी।। जयदु भारदी.....।।।।

अर्थ— वीर जिनेन्द्र के मुख से निर्गत (खिरी हुई), गौतमादि गणधरों द्वारा द्वादशांग रूप से ग्रंथित, श्रुत केवलियों द्वारा कथित, गुणधर, पुष्पदन्त व भूतबली आदि आचार्यों द्वारा विरचित कुंदकुंद भारती तथा श्रुतधराचार्यों द्वारा धारण की गई शारदा, श्रुतदेवी तथा सरस्वती आदि नामों से युक्त भारती जयवन्त हो।

अण्णाण तमहारिणी, सण्णाण—सुद कारिणी,

सुहृद—संति दायिणी, बारसंग धारिणी।

मिच्छत्त अंधं णासदि, सम्मत्त सम्मं—सासदि

जिणवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी।। जयदु भारदी.....। 2।।

अर्थ— अज्ञानतम को हरने वाली, सद्ज्ञान—श्रुत को करने वाली, सतत शांति देने वाली, द्वादशांगरूप बारह अंगों को धारण करने वाली, मिथ्यात्व अंधकार का नाश

करने वाली, सम्यक्त्व का अच्छी तरह शासन कराने वाली शारदा, श्रुतदेवी तथा सरस्वती आदि नामों से युक्त भारती जयवन्त हो।

विसय—विस रेयणं, जम्ममरण छेयणं,

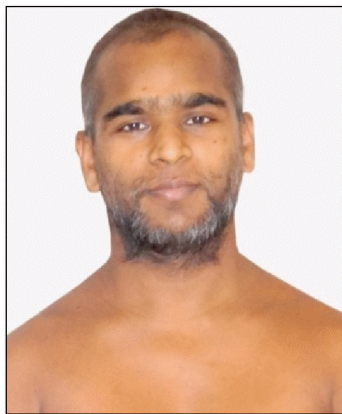
जिणवयण मोसहं, सत्थ—हि सुहारसं।

कम्मपुंज य जारदि, भवजलदि तारदि

जिणवाणी सारदा, सुयदेवी सरस्सदी।। जयदु भारदी.....। ३।।

अर्थ— विषय रूपी विषयों का विरेचन (नाश) करने हेतु व जन्ममरण का छेदन करने हेतु जिनवाणी ही औषधि है। वस्तुतः जिनवाणी (शास्त्र) ही सुधा रस जो कर्म पुंज को जलाती है और संसार समुद्र सागर से तारती है, ऐसी शारदा, श्रुतदेवी तथा सरस्वती आदि नामों से युक्त भारती जयवन्त हो।

## गुरुवर के श्रीचरणों में नमन...



मेरे जिस्म और जान में गुरुवर, नाम आपका है,  
आज अगर मैं खुश हूँ तो गुरुवर! यह अहसान आपका है।  
हे गुरुवर! आपके दरबार में एक खासयित देखी,  
आपको देते नहीं देखा, मगर झोली भरी देखी।

सबके संताप को हरने वाली आपकी वातसत्यमयी मुस्कान एक ही समय में सम्पूर्णरूप से सबको अपनी सी ही लगती है जो इस पंचम काल में समवशरण की महिमा सा आभास करा जाती है। हे वर्तमान के वर्धमान, माँ सरस्वती—जिनवाणी के सुपुत्र, ज्ञान के वाहक, जन जन कल्याणी हम अल्पश्रुतों को अपना विरद निहार कर, कर लो आप समान। गुरुदेव के चरणों में कोटि कोटि वंदन, नमन नमोस्तु गुरुवर नमोस्तु गुरुवर, नमोस्तु गुरुवर।

**-: नमन कर्ता :-**



श्रीमती रैन मंजूषा देवी जैन धर्म पत्नी गुरुभक्त स्व. श्री विजयस्वरूप जैन 'जमींदार'